विश्व-कहानी-साहित्य सं० २

यहां आंसू बहाना है मना

तथा अन्य

जेल-जीवन की कहानियां

राधेश्याम मिश्र

विद्या मन्दिर लिमिटेड
कनॉट सरकस, नई दिल्ली

समर्पण

उन समाज-सेवकों के हाथों में या उन असेम्बली के मेम्बरों तथा मिनिस्टरों के हाथों में समर्पित है जिनके हृदयों में जेलों के सुधार की प्रबल इच्छा है और जो जेलों के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हैं।

—लेखक

प्रस्तावना

वैसे तो एक कहानी-संग्रह की प्रस्तावना लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, परन्तु मेरी कहानियां हिन्दी-संसार में अपने प्रकार की भिन्न होने के कारण मुझे पाठकों को थोड़ी बातें प्रारम्भ में बता देना ठीक रहेगा।

पहली बात कहानियों में वर्णित घटनाओं के सम्बन्ध में है। उन घटनाओं को किसी एक जेल-विशेष की बातें नहीं समझना चाहिये। वे सब जेलों में होती रहती हैं और उनमें वर्णित सत्य तो भारतवर्ष की जेलों में समान रूप से सर्व व्यापी है। इन कहानियों में वर्णित घटनायें भी कल्पित नहीं हैं। उनमें दो-तीन बातों को छोड़कर सभी सच्ची हैं।

दूसरी बात कहानियों के विषय के सम्बन्ध में है। कुछ लोगों को यह एतराज़ हो सकता है कि आखिर जेलों के विषय में, पतित मनुष्यों के विषय में, इतने पन्ने काले करने का क्या उद्देश्य है? उसमें कला ही क्या है? सौन्दर्य ही क्या है?

इस विषय में मैं यहां विस्तार से बहस करने में असमर्थ हूँ। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैं 'कला जीवन के लिये है' इस सिद्धान्त का पक्षपाती हूँ, इसके विरुद्ध 'कला कला के लिये है' इसे मैं नहीं मानता। मैं चाहता हूँ कि कला यथा सम्भव वास्तविक, प्राकृतिक, सच्ची और जीवन के लिये उपयोगी होनी चाहिये। इसके विरुद्ध नितान्त काल्पनिक, अप्राकृतिक, और जीवन के लिये अनुपयोगी नहीं होना चाहिये। भले ही ऐसी कला कुछ लोगों को सुन्दर न मालूम पड़े परन्तु मेरा विश्वास है कि वह 'सत्य और शिव' तो अवश्य होगी और यही मेरी सुन्दरता की परिभाषा भी है। इसके विपरीत वह कला जिसका कहीं अस्तित्व भी नहीं है, जो केवल आकाश-कुसुम की भांति न जाने कहां

की वस्तु हैं, मेरे ख्याल से व्यर्थ की चीज़ है। वह केवल एक श्रेणी-विशेष की मानसिक ऐयाशी का साधन-मात्र है। उसे मैं अमीरों की ऐयाशी गिनता हूँ।

मेरी कहानियों का विषय साधारणतया देखने मे संकुचित सा मालूम पड़ सकता है, परन्तु जरा गम्भीरता से विचार करने पर इस विषय की जड़ें हमें अपने दैनिक जीवन के नीचे फैली हुई दिखाई देगी। यदि स्कूलों, अस्पतालों यानी शिक्षा और रोग के विषय संकुचित तथा परिमित नहीं कहे जा सकते हैं तो यह अपराध-शास्त्र भी संकुचित मानने में कोई हर्ज़ नहीं है। जो लोग इस विषय को संकुचित मानते और जेलों और कैदियों से उदासीन रहते हैं वे उन लोगों के समान हैं जो पड़ोस में लगी हुई आग से उदासीन रहा करते हैं।

आज हमारी जेलों से लाखों आदमी बिगड़ कर बाहर आते हैं। वे भयंकर प्लेग के रोगियों की भांति हमारी अज्ञानता में समाज में घुसकर उसकी अपार हानि करते हैं। काश जेलों से उदासीन रहने वाले लोग केवल एक ही नर-पशु की की हुई सामाजिक हानियों की कल्पना कर सकते। 'एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है' इस कहावत की सत्यता हमें नहीं भूलना चाहिये और कैदियों तथा जेलों को दूर की वस्तुएँ, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं समझना चाहिये।

जीवन एक जटिल वस्तु है। कानून और भी जटिल है। प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ अपराध करता रहता है। हां वह उन अभागों की तरह पकड़ा नहीं जाता जो जेलों में बन्द हैं। आज यदि पुलिस को ईश्वरीय शक्तियां प्राप्त होतीं, यानी वह सब के मन की बात जान सकती तो हम देखते आज सारा संसार जेल ही बन गया होता—बड़े बड़े भले आदमी ऐसे घोर अपराधों के लिये दण्डित होते हुए देखे जाते कि हम आश्चर्य से चकित हो जाते। अस्तु यह मत सोचिए कि हम बड़े पवित्र हैं और कैदी लोग बड़े नीच प्राणी हैं। अपने हृदय पर हाथ रखकर देखने ही से लेखक के वाक्यों की सत्यता मालूम हो जायगी। इसके सिवाय यह

भी मत सोचिये कि कभी आप इस नरक में नहीं पड़ेंगे। यह सोचना भारी भूल है कि अपराध जानबूझ कर किया हुआ दुष्कर्म है। नहीं, अपराध एक प्रकार की प्रबल मानसिक उत्तेजना का परिणाम है जो कई प्रबल कारणों से उत्पन्न होती है और जो मनुष्य के वश के बाहर होती है। अस्तु आप यह नहीं कह सकते कि कब आपसे क्या भूल हो जायगी और आप उसी नरक में जा गिरेंगे जिसके विषय में आप इतने उदासीन थे। तब आपको पश्चाताप हुए बिना न रहेगा कि 'उफ् यह जगह बहुत बुरी है। इसका सुधार होना चाहिये।'

अस्तु लेखक का तात्पर्य यह है कि जेलों और कैदियों के विषय को अपना निजी विषय समझना चाहिये और इस सम्बन्ध में सुधार-कार्य करने वालों को यह नहीं समझना चाहिये कि वे कोई परोपकार या त्याग का काम कर रहे हैं, बल्कि यह समझना चाहिये कि वे अपना निजी बड़ा ही जरूरी काम कर रहे हैं।

ये कहानियां केवल जेल-जीवन के कुछ ही पहलुओं का चित्र दिखाती हैं। जेल-जीवन का पूर्ण चित्र एक पुस्तक में समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके सिवाय वहां पर जो होता है वह सब इतना अद्भुत और घोर है कि उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। तो भी लेखक ने थोड़ा सा प्रयत्न अपनी शक्ति के अनुसार किया है। इससे यदि वह पाठकों को उस अद्भुत लोक की कुछ भी कल्पना करा सका तो उसका परिश्रम सफल हो जायगा। लेखक को आशा है कि सहृदय पाठक और शक्तिशाली लोग शीघ्र ही जेलों के सुधारों के लिये आन्दोलन उठायेंगे, और देश में स्थान २ पर ऐसी संस्थायें स्थापित की जायंगी जिनका उद्देश्य कैदियों की सहायता करना होगा।

तीसरी बात लेखक स्वयं है। उसका नाम हिन्दी-संसार को मालूम नहीं है अस्तु नया है, परन्तु उसकी सेवायें नई नहीं हैं। वह समय समय पर अज्ञात नामों से हिन्दी की सेवा करता रहा है। ये कहानियां उसकी स्वयं की अनुभूत, सुनी हुई और देखी हुई हैं। लेखक ने कई वर्ष तक निकृष्ट

बन्दियों के समान निकृष्ट व्यवहार पाकर ये अनुभव पाये हैं जिन्हें वह पाठकों के सामने रख रहा है। इन अनुभवों के प्राप्त करने में लेखक को कितना खूने-जिगर पीना पड़ा है, कितनी यातनायें सहनी पड़ी हैं इसकी कल्पना ए०, बी०, क्लास वाले बन्दियों को या कांग्रेस में सी० क्लास वाले बन्दियों को भी नहीं हो सकती। अस्तु लेखक इन अनुभवों को बहुत कीमती समझता है। देखें हिन्दी-संसार इनकी क्या कद्र करता है।

—लेखक

प्रकाशक की ओर से

श्रीयुत राधेश्याम मिश्र 'उन्मत्त' से मेरा परिचय उन दिनों से है जब मैं ग्वालियर में हाईस्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। तब आप भी वहीं हाईस्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उन दिनों में भी इन्हें कहानियां लिखने और कविता करने का शौक था। हमें समय २ पर इनकी कहानियां और कवितायें सुनने का अवसर मिलता था और हमारा काफ़ी मनोरंजन उनसे होता था।

यह वह काल था जब क्रान्तिकारी दल का भारत की राजनीति में बोलबाला था। सन्देह में इन्दौर राज्य ने लेखक को एक लम्बे काल के लिये, सम्भवतः छः वर्ष के कठोर कारावास के लिये भेज दिया था।

जेल से छूटने पर जब 'उन्मत्त' जी मुझे मिले तो उनमें जो परिवर्तन होगया था उसका कारण मैं न समझ सका। समय २ पर जो समाचार मुझे मिलते थे उनसे यह ज्ञात होरहा था कि आपका ध्यान योग की ओर है। इनसे पूर्व भी कई राजनैतिक वन्दियों के जीवन में इस प्रकार का परिवर्तन देखने में आया था—अन्य कैदियों से अलग रहना, खान-पान में छुआछूत का विचार, योगासन का अभ्यास, परमतत्व की खोज, देवी-देवताओं में श्रद्धा और मूर्ति-पूजा में अनन्य विश्वास इत्यादि।

भाग्यवश मुझे प्रकाशनार्थ लेखक की ये कहानियां मिलीं, और तब मुझे 'उन्मत्त' जी में जो अस्थायी परिवर्तन हुआ था उसका कारण विदित हुआ।

अंडमन के कुछ कैदियों की जीवन-गाथायें प्रकाशित हुई थीं, परन्तु उन्हें पढ़कर मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि भारतीय जेलों में भी कैदियों की इतनी दुर्दशा होती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस युद्ध से पूर्व राजनैतिक कैदियों के अतिरिक्त जो कैदी जेलों में पहुंचते थे वे अधि-

कांश निम्न वर्ग के होते थे। परन्तु निम्न वर्ग के अशिक्षित और निर्धन बन्दियों का जीवन भी इतना नीरस, भूख से पीड़ित, यातनामय और नारकीय होता होगा इसका इतना स्पष्ट चित्र, जो लेखक की इन कहानियों से नेत्रों के सामने खिचता है, अन्यत्र सम्भव है इस रूप में देखने को न मिले। साथ ही लेखक के जीवन में जो उपरोक्त अस्थायी परिवर्तन हुआ था उसके मूल में ऐसे नारकीय जीवन से, ऐसे विषमय जीवन से, अपने आपको बचाना था। इसके अतिरिक्त और उपाय भी क्या था? अगर लेखक ऐसे नारकीय जीवन से विमुख होकर अपने आपको एक संकुचित घेरे में बन्द कर समाधिस्थ न होता तो काजल की कोठरी से बचकर कैसे निकल पाता। लेखक ने ऐसे नारकीय लोगों के बीच में रह कर, अपने आपको विरक्त रखते हुए भी, उनके जीवन का इतना निकट से अध्ययन कर हमारे सामने जेल-जीवन का इतना सत्य चित्र, कहानियों के रूप में, एक विज्ञ कलाकार की तरह खींचा है उसके लिये हिन्दी-संसार, मुझे विश्वास है, अवश्य ही उसे अपनायेगा।

वर्तमान परिस्थिति में कागज के अभाव में कहानियों का यह संग्रह अधिक विस्तृत और सुन्दर नहीं बनाया जा सका। इसके लिये मैं पाठकों तथा लेखक दोनों के सम्मुख अपनी असमर्थता प्रकट करता हूँ।

अनुकूल परिस्थिति होने पर लेखक की जेल-जीवन सम्बन्धी अन्य रचनाएँ तथा अन्य कवितायें और कहानियां भी पुस्तकाकार रूप में पाठकों के सम्मुख आवेंगी और सम्भव है उनके प्रकाशन का सौभाग्य भी मुझे ही मिले।

—राम प्रताप गोंडल

कहानियों की सूची

नङ्गा

बल्देव प्रसाद उर्फ बल्लू जब पहले-पहल जेल के फाटक में घुसा तो उसे वहां पर मौजूद वार्डरों पर बड़ा क्रोध आया और उसने अपने मन में ठान ली कि वह इस बात की शिकायत साहब से अवश्य करेगा। आखिर दूसरे दिन उसने शिकायत कर ही तो दी।

"हुजूर!" लाइन में खड़े हुए बल्लू ने लाइन के सामने से जाते हुए साहब से कहना शुरू किया, "मेरे साथ फाटक वालों ने बड़ी ज्यादती की है, मुझे बहुत बेइज्ज़त किया है।" इतना कहकर बल्लू ने अपना मुंह नीचा कर लिया। लज्जा, ग्लानि और क्रोध से उसका चेहरा लाल हो उठा।

साहब चलते २ रुक गया। वह बल्लू के शब्द सुनकर कुछ चौकन्ना सा हुआ: उसने नाक-भौं सिकोड़ी और बोला, "क्या बोलता है? क्या किया है?"

"हुज़ूर, मेरी बड़ी बेइज्ज़ती की है।"

"कैसी?" साहब का स्वर कुछ कड़ा हो उठा, क्योंकि वह किसी कैदी पर ज्यादती होना नहीं सहन कर सकता था।

"हुज़ूर कल जब मैं जेल में दाखिल हुआ तो फाटक पर इन लोगों ने मुझे बिल्कुल नंगा कर दिया। हुज़ूर इतने आदमियों के सामने मेरी बेइज्ज़ती हुई। मैं बहुत कहता रहा कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, मगर ये लोग न माने और मेरे........में हाथ डाल कर इन लोगों ने देखा और मुझे गालिया दीं।" बल्लू कहते २ बिल्कुल लाल पड़ गया।

का गुस्से के मारे बुरा हाल था, मगर अपमान का बदला लेने की वृत्ति उसे [illegible] ध्यान देने के लिये मजबूर कर रही थी।

साहब का चेहरा जहाँ पर पहले सिकुड़ रहा था वहाँ पर बल्लू की बातें सुनकर एकदम फैल गया और उस पर आनन्दित हंसी चमकने लगी। बल्लू ने देखा कि साहब के साथ चलने वाले दूसरे अफ़सर, वार्डर तथा कैदी भी अपने गालों के अन्दर हंसने लगे। आखिर साहब ने जवाब दिया, "ओ! इसमें कोई बुरी बात नहीं है! इसमें बेइज़्ज़ती नहीं होती। ऐसा क़ानून है।"

बेचारे बल्लू का मुंह आश्चर्य से खुल गया और वह आंखें फाड़ कर साहब की ओर देखने लगा। साहब आगे बढ़ गया।

"ऐसा क़ानून है" ये शब्द बल्लू के मन में घण्टे की आवाज़ की तरह गूँजने लगे। वह सोचने लगा कि ऐसा कैसा कानून है? किसी को नंगा करना कहाँ का कानून है? उसके मन में वह चित्र घूम गया जब फाटक पर वार्डर उसकी धोती पकड़कर खींच रहा था और वह 'नहीं साहब' 'नहीं हुज़ूर' 'उसमें कुछ नहीं है' इत्यादि चिल्ला रहा था। तब उसके सिर पर एक धौल पड़ी थी और उसको उत्तमोत्तम गालियां सुनने को मिली थीं। आखिर तीन आदमियों ने उसके हाथ झकझोर कर अलग किये थे और उनमें से एक ने उसकी धोती खोल डाली थी तथा उसके.........में हाथ डाल कर टटोला था। उसने आंखें बन्द कर ली थीं। फिर लाज और गुस्से से कांपते हुए उसने अपनी धोती पहनी थी। तब उसने सोचा था कि यह इन लोगों की ज़्यादती है, मगर जब उसे मालूम हुआ—खास साहब के मुँह से मालूम हुआ—कि ऐसा क़ानून है तो उसको बड़ा अजीब सा लगा। उसने कुछ कहना चाहा और गर्दन ऊपर को उठा कर अपना मुँह खोला तो देखा कि सब क़ैदी उसी की ओर देखकर फुसफुस कर रहे थे। उसकी नज़र पड़ते ही वे बड़ी ज़ोर से मुस्कराये। बेचारा बल्लू बोलना ही सोचता रह गया; न जाने उसके गले में कुछ अटक गया।

साहब चला गया।

साहब के जाने के बाद कई कैदियों ने उसे घेर लिया जिनमें जेल का मशहूर लफंगा हुसैना भी था।

"वाह दोस्त! बात तो खूब मजे की कही। हां, क्या कहा था? कहां हाथ डाला था?"

"ओ हो! तेरी .... बेचारे की ...."

"अहंन! हैं! हैं! खूब!"

"लेना भाई! सम्हालना! बड़े शरमीले हैं। चादरी सड़ जायगी. मैला बदन हो जायगा।"

इसी प्रकार की सैकड़ों फब्तियों की उस पर बौछार होने लगी। सब लोग ठहाका मारकर हंसने लगे। सभी को आश्चर्य हो रहा था कि यह कैसा अजब आदमी है, बिल्कुल हूरा है, हूरा! तलाशी में इसकी बेइज्जती होगई। बड़े ऐसे थे तो जेल में काहे के लिये आये, इत्यादि इत्यादि। बल्लू तो बिल्कुल चौंधिया गया। काम जारी था:—

"दीखते तो हैं .... रहे होंगे पहिले ...."

"हां, मामला तो कुछ ऐसा ही नजर आता है; खैर इन्शा अल्ला, यहां भी किसी का घर बसायेंगे।

सारे कैदियों में अजीब प्रकार की मनोविनोद की लहर बह चली। हुसैना सब का अगुवा था। वह छांट छांट कर ऐसी ऐसी अश्लील बातें कहता था कि जिनको लिखने से कोई भी साहित्य 'धन्य' हो जायगा। वह उपदेश भी देता जारहा था, "ऐसा क्या भाई! ऐसा क्यों बिचकते हो? मर्द हो कि औरत? मर्द होकर शरम कैसी? यह क्या जंगलीपने की बात करने लगे साहब के सामने?" इत्यादि इत्यादि।

मर्द और जंगली तथा हूरा की हुसैना-कृत परिभाषायें यदि इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका वालों के हाथ लग जायें तो अवश्य वे उन्हें स्थान दे दें और नोबुल प्राइज़ में तो कोई सन्देह ही नहीं है। बेचारा बल्लू ऐसे जीवों के बीच में घिरा खड़ा था जो मर्द माने बेशरम और

हूरा तथा जंगली नाते शर्मदार समझते थे। उन्होंने बल्लू के दोष के कारण उसे मर्द से औरत और सभ्य पुरुष से जंगली तथा हूरा बना डाला। वह खड़ा खड़ा उनकी बातें सुन रहा था. उसकी नज़र जमीन की ओर लगी हुई थी। उस समय यदि पृथ्वी फट जाती तो वह बड़ी खुशी से उसमें समा जाता।

हुसैना की मंडली का जोश बल्लू के अविरोधी भाव को देखकर और भी अधिक बढ़ने लगा। हुसैना ने बल्लू को एकबारगी सभ्य और मर्द बना देना चाहा. अस्तु वह चुपके से बल्लू के पीछे चला गया और फुर्ती से उसकी लांग (कांछ) खोल दी। जब तक बल्लू सम्हले तब तक हुसैना के बिजली के हाथों ने तड़पकर उसकी धोती पीछे से ऊपर को उठा दी। सब लोग हो हो हो हो करके हंस पड़े परन्तु बल्लू साप की भांति फुफकार उठा। उसने जल्दी से धोती सम्हाली और गालियां बकता हुआ हुसैना की ओर दौड़ा। सब कैदी तितर-बितर हो गये और हुसैना भाग गया।

अधिक शोर मचने के कारण आंखें निकालता और डंडा फटकारता हुआ वार्डर दौड़ा हुआ आया। उसने बल्लू को गाली बकते और झपटते हुए देख लिया था, अस्तु उसको दो-तीन डंडे जमाये और पकड़कर जेलर के सामने ले गया।

बल्लू का गुनाह साफ था। वह एक कैदी को मारने के लिये दौड़ रहा था। जेलर ने उसके बेड़िया डाल दीं। बल्लू ने बहुत कहा, "साहब, मेरा कुछ गुनाह नहीं है। मैं बेकसूर हूँ, सरकार! वह कैदी मुझे बुरी बुरी बातें बक रहा था और मेरी धोती खोल दी उसने।..."

जेलर ने कायदे के अनुसार जवाब दिया, "तुमको शिकायत करना चाहिये थी। तुम खुद मारने के लिये क्यों दौड़े?"

"पर हुजूर, उसने मेरी धोती खोल दी थी और......"

"कुछ भी हो, तुम्हें हमसे कहना चाहिये था। यहां ऐसा ही कानून है।"

बेचारा बल्लू कानून नम्बर दो सीखकर बेड़ियां खड़खड़ाता, लड़खड़ाता, गिरता, जलता-भुनता और कुढ़ता हुआ वापिस आया।

(२)

बलदेव प्रसाद जाति का वैश्य था। उसके घर में मिठाई की दूकान थी। धोखे से एक आदमी पर गरम कड़ाह उलट जाने पर वह गिरफ्तार कर लिया गया था। देखने में हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था। उसकी उम्र २५ वर्ष के आसपास होगी। स्वभाव से वह संकोची और लजीला था। उसे किसी अजनबी आदमी से सहसा बात करने में भी शर्म लगती थी। वह गरीब भी नहीं था, अस्तु लाड़, प्यार और सुख में पला था। जेल में प्रवेश करने के दूसरे दिन सुबह ही उसके जीवन में ये नवीन घटनायें घटित हुई। अभी उसे सजा नहीं हुई थी, वह केवल हवालाती था; मगर जेल के विषय में उसने जो भयङ्कर बातें बाहर सुनी थीं वे उसे सत्य के रूप में दिखाई देना शुरू हो गईं। उसे मालूम पड़ा मानो कोई उसे मार मार कर गऊ का मांस खिला रहा है। उसने चारों ओर दृष्टि डाली; उसे कहीं भी छुटकारे का रास्ता दिखाई न पड़ा। जेल की भदरंगी ऊंची दीवार मानों उसकी दुर्दशा और बेबसी पर हंस रही थी। किसी ओर दया और सहानुभूति का चिन्ह तक नहीं दिखाई पड़ता था।

उपरोक्त घटना से वह इतना विचलित हुआ था कि वह सवेरे टट्टी भी नहीं गया और भोजन के नाम पर वह केवल थोड़ा सा पानी पीकर ही रह गया। शाम को जब वह टट्टी गया तो दूसरी मुसीबत सामने दिखाई पड़ी। एक लाइन से कई खुली टट्टियां थीं जिनमें कई कैदी आनन्द से बैठे हुए अपनी प्राकृतिक आवश्यकता से निवृत्त हो रहे थे। वह बड़ी दुविधा में पड़ा। उसने सोचा कि वे लोग उठ कर बाहर आजाये तब एकान्त में टट्टी फिर लेगा, मगर अभी उसे कानून नम्बर तीन का सबक सीखना बाकी था।

उसे अलग खड़ा देखकर वार्डर और कैदी-अफसर ने उसे डाट

कर बतलाया कि सब के साथ टट्टी जाना होगा। बेचारा आदमी बड़े धर्म-संकट में पड़ा। टट्टी भी कोई ऐसा साधारण काम नहीं था जिसे कल पर छोड़ दिया जाता या स्थगित कर दिया जाता। लाचार वह एक टट्टी में जाकर नीचा सिर किये हुए बैठ गया उसके आगे-पीछे सिर्फ पतली दीवारों की आड़ में कई कैदी टट्टी फिर रहे थे। उनमें से कुछ हंस रहे थे और कुछ बातें भी करते जाते थे। बगल से कैदी आ जा रहे थे जिनकी नज़र टट्टी में बैठने वालों पर पड़ती थी: कभी कभी किसी के सामने खड़े होकर कोई कैदी उससे कुछ बातें करने लगता या कोई भद्दी अश्लील बात कहता और दोनों हँस पड़ते।

बलदेव को मालूम पड रहा था मानों कैदी जानबूझकर उसे देखने के लिये आ जा रहे थे और उसके सामने ठिठक ठिठक कर चलते या खड़े हो जाते थे। वह लाज के मारे अपने शरीर के अन्दर घुसा जारहा था। कैदियों का हास्य और आना-जाना उसे ऐसा मालूम पड़ रहा था मानों उसके खुले अङ्गों पर कोई कोड़े मार रहा हो। उसे इतनी पीड़ा और लज्जा प्रतीत हुई कि वह टट्टी फिरना भूल गया और जल्दी से उठकर बाहर आगया। उसका चेहरा वेदना और विवशता से लाल और हैरान होरहा था। बाहर आकर उसने ठंडी सास ली और मन ही मन में गुनगुनाया 'हे राम! कहां आ फंसा मैं?'

शाम को जेल बन्द होने के समय उसने अद्भुत दृश्य देखा, जिसे देखकर उसे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। वह सोचने लगा कि कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है। उसने देखा कि सब कैदी एक लाइन से खड़े किये गये। फिर उन्होंने अपने कुर्ते और टोपियां उतारकर रख दीं; बाद में अपने जांघिये उतारे और वे नंगे (सिर्फ एक कपड़े की पट्टी सामने लगाये हुए) खड़े होगये। इसके बाद वे पीछे को घूम गये और अपनी पीठ और नंगे पुट्ठे आगे की ओर करके खड़े होगये। इसके बाद वे फिर आगे को मुँह फेरकर खड़े होगये, तत्पश्चात् उन्होंने पीछे से वह पट्टी खोल दी और वह केवल सामने की ओर लटकती

हुई रह गई। अर्थात् वे बिल्कुल नंगे हो गये। यह नग्न हो चुकने पर उन्होंने क्रम-क्रम से अपने सारे कपड़े पहिन लिये। बल्लू को बतलाया गया कि यह 'तलाशी-परेड' है जो हर रोज़ कैदियों से ली जाती है।

बल्देव हवालाती था अस्तु उसे तलाशी परेड नहीं करनी पड़ी, लेकिन सारे हवालातियों के साथ उसे भी एक लाइन में खड़ा होना पड़ा और वार्डर ने आकर प्रत्येक आदमी के शरीर के प्रत्येक भाग को ज़ोर से टटोल कर देखा। बल्लू का शरीर जब टटोला गया तो उसको ऐसा मालूम पड़ा मानों दो काले सांप या गर्म लोहे की सलाखें उसके बदन पर लोट रही हों। वह कांपा, सिकुड़ा और शर्माया और लाल पड़ गया। मगर.........।

मगर सामने ही उसने तलाशी परेड में खड़े हुए नंगे आदमियों को देखा। उनकी कमर से लटकती हुई सफ़ेद पट्टी हवा में हिल रही थी और उनका प्रत्येक अंग साफ़ दिख रहा था। उसने उन आदमियों के चेहरों की ओर देखा। उसे उन पर दया आई परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि उनके चेहरे निर्विकार थे। कोई कोई उदासीन और अन्यमनस्क खड़े थे, किसी किसी के चेहरे पर पीड़ा अङ्कित थी और कोई कोई मुस्करा रहे थे मानों कोई आनन्द का समय हो। कुछ लोगों की आँखें शरारत से चमक रही थीं और नंगे तथा लुच्चे लोग अजीब तरह का मुँह बना रहे थे। हुसैना के चेहरे से शरारत-मिश्रित हँसी फूटी पड़ती थी और वह ऐसी लापरवाही से खड़ा था मानो वह जान-बूझकर अपने गुप्त अंग दूसरों को दिखाना चाहता था।

बल्देव ने आश्चर्य के साथ उनके रंग-ढंग और तलाशी-परेड का उन पर परिणाम देखा। जो चीज़ (अर्थात् लज्जा) वह ढूंढ रहा था वह उसे किसी के भी चेहरे पर दिखाई न पड़ी। वे लोग ऐसे थे कि जिनकी लज्जा मारपीटकर, दबाकर बाहर निकाल दी गई थी। वे अब ऐसा आचरण करने का प्रयत्न कर रहे थे जिससे कि लज्जा को भी लज्जा आवे। सचमुच वे अपने उक्त आचरण द्वारा उन लोगों से बदला

ले रहे थे जिन्होंने उन्हें ऐसी निर्लज्जता का पाठ पढ़ाया था, जिन्होंने गन्ने के रस की तरह लज्जा को उनमें से निचोड़कर बाहर निकाल दिया था। इसी लिये वे जानबूझकर ऐसी हरकत करते थे जिससे कि अफसरों को शर्म लगे। इसी कारण वे बिलकुल कर सामने की पट्टी हटा देते थे या हवा में उड़ने से उसे नहीं बचाते थे। सच बात यह थी कि हजारों वर्ष के सभ्यता के विकास ने मनुष्य को जो बात सिखाई थी तथा उसमें जो संस्कार डाले थे उन्हें एक ही बार बलपूर्वक उखाड़कर, छीलकर फेंक दिया गया था और प्राचीन असभ्य मनुष्य नंगा रह गया था। वह अन्धकार-युग में पहुंच गया था। उसकी पशुता प्रबल हो उठी थी और उसे वह अपने सामने खड़े हुए सभ्य आदमियों के मुँह पर तड़ाक से मारना चाहता था; मानो वह चिल्लाकर कह रहा था कि 'लो तुमने मुझे नंगा किया है, अब सम्हालो इसे !' वह अट्टहास करके सभ्यता के ठेकेदारों से पूछ रहा था 'हां, अब शर्माते क्यों हो ? अब तुम्हारी बारी है, तुम्हीं ने जबरदस्ती मुझे नंगा किया है न ? तुम कुछ देखना चाहते थे न ? तब देखो अब !' इस प्रकार नंगी, भ्रष्ट और पतित मनुष्यता सभ्यता के सामने खड़ी थी।

रात को बलदेव अपने बिस्तर पर पड़ा पड़ा करवटें बदलता रहा। उसे नींद नहीं आई। सारी रात उसकी आंखों के सामने वह अद्भुत दृश्य नाचता रहा। भविष्य का भीषण भय उसके सामने खड़ा था, 'अगर सजा हो गई तो ?' वह दृश्य सोचते ही वह घबड़ा जाता। वह अपने को एक लाइन में इस प्रकार नंगा खड़ा हुआ कल्पित करता तो उसके प्राण छटपटाने लगते। वह घबड़ा कर कहता 'हरगिज़ नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता !' फिर वह अपनी बेबसी पर ध्यान देता, अफसरों की गालियां, मार और बेइज़्ज़ती का उसे ख्याल आता, तब वह अपने एक ओर खाई और दूसरी ओर पहाड़ खड़ा पाता। किसी भी प्रकार वह अपने मन को शान्ति नहीं दे सका। तब वह ठीक उसी तन्मयता के साथ अपने भगवान का ध्यान करने लगा जिस प्रकार गज ने ग्राह के

फन्दे में पड़ने पर किया होगा। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी और सिर्फ एक ही रट उसने लगा दी, 'हे भगवान, मुझे सजा न हो—।'

सवेरा होने के कुछ देर पहले उसकी नींद आ गई थी। उसने एक भयङ्कर स्वप्न देखा। उसने देखा कि वह बाजारी चौक में खड़ा है और जबरदस्ती उसको नङ्गा कर दिया गया है। वह अपने कपड़ों से चिपकता जाता है मगर कपड़े बलपूर्वक उसके शरीर से निकाल लिये गये; फिर सब लोग उसे घेर कर खड़े हो गये और हल्ला मचाने लगे। धीरे धीरे वहां पर सैकड़ों आदमी जमा हो गये। तब उसने अपने दोनों हाथों से अपने आगे-पीछे के अङ्ग ढक लिये मगर उसी समय हुसैना वहां पर आ पहुंचा और उसने तलवार से उसके दोनों हाथ काट डाले। वह एक बारगी चीख पड़ा और उसकी नींद खुल गई। उसके चीखते ही पहरेदार कैदी-अफसर उसके पास आया और उससे डांट कर पूछा, "क्या है बे? क्यों चिल्लाता है?"

बल्लू उठकर बैठ गया और अपने हाथों की ओर देखने लगा। जल्दी जल्दी उसने अपने शरीर के कपड़ों पर नजर डाली मानो उसे अपने हाथ कटने और नंगा किये जाने पर कुछ कुछ विश्वास था।

बल्लू को चुप देखकर कैदी-अफसर बोला, "क्यों रे बोलता क्यों नहीं है, क्यों चिल्लाया था? क्या किसी ने.........?" इतना कहकर वह हँसता हुआ चला गया।

बेचारा बल्लू जवाब भी क्या देता। स्वप्न का वर्णन भी तो उसके लिये लज्जाजनक था।

(३)

धीरे धीरे दिन बीतने लगे। बल्लू का मुकदमा लम्बा ही होता जा रहा था, मानों उसका परमेश्वर जानबूझकर उसे जेल में रखकर नंगा बनाना चाहता था। कुछ दिनों तक तो बल्लू को टट्टी जाना फांसी पर चढ़ने के समान ज्ञात होता रहा मगर धीरे धीरे वह उसका आदी

होने लगा। पहले तो उसने नीची गर्दन करके—यहां तक नीची कि वह उसके घुटनों के अन्दर घुस जाती थी—टट्टी में बैठना शुरू किया, परन्तु बाद में उसको शायद इस प्रकार बैठने में बदबू आने लगी या कुछ कष्ट होने लगा या शायद दूसरा ही कोई कारण हो. उसकी गर्दन ऊंची होने लगी यहां तक कि टट्टी होने के समय उसका सिर गर्दन पर सीधा खड़ा रहने लगा। पहले की अपेक्षा उसे अब टट्टी में समय भी अधिक लगने लगा तथा टट्टी में होने वाली कैदियों की बातचीत और हँसी में वह मन ही मन सहयोग भी देने लगा।

यही बात शाम की तलाशी के बारे में भी हुई। पहले तो उसे लज्जा और क्रोध आया करता था मगर बाद में थोड़ी सी झुंझलाहट मात्र शेष रह गई। इतने पर भी वह तलाशी-परेड के भाव को किसी प्रकार भी अपने मन में स्थान न दे सका। उसके विषय में रोमांचकारी कल्पना करना तक उसके लिये असह्य था, अस्तु उसने विचार करना तक छोड़ दिया। उसने अपना विश्वास बना लिया कि वह अवश्य बरी हो जायगा और ईश्वर की कृपा से उसे उस घोर अप्रिय स्थिति में नहीं पड़ना पड़ेगा। हां, एक बात अवश्य हुई। वह यह कि तलाशी परेड देखने में जहां उसके हृदय में पहले दया, घृणा और क्रोध आया करता था अब उसके स्थान पर उसे उसमें कुछ मजा सा आने लगा। वह बड़ी रोचकता से वह सारा दृश्य देखा करता, एक एक कैदी की आकृति पर गौर करता और लुच्चों की शरारत और इशारे देखकर उसे हँसी आजाती। तब वह धीरे से गुनगुनाता, 'कितना लुच्चा है वह आदमी!' खास कर हुसैना की हरकतें अब उसे मनोरंजक प्रतीत होने लगीं। उसने देखा कि सारे कैदी उसके हास्य और अश्लील चेष्टाओं से प्रसन्न रहते हैं और उसे सब से बढ़िया, खुशदिल तथा मसखरा समझते हैं। धीरे धीरे वह भी हुसैना को प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगा, मगर अभी वह खुले दिल से अपना वह भाव प्रकट करने में हिचकिचाता और लजाता था। उसकी हालत संक्षेप में उस नये बैल के समान थी

जो पहले पीठ पर हाथ भी न रखने देता हो परन्तु बाद में धीरे धीरे खाली लक्कड़ घसीटने लगे, फिर जुआ पहिनने लगे तथा अन्त में......

इसी प्रकार उसने देखा कि अधिक से अधिक कैदी प्रायः घोर अश्लील बातें करते तथा उन्हीं में बड़ी खुशी मनाते हैं। साधारण से साधारण बात कहते समय दो-तीन अश्लील और भद्दे मुहावरे और गालियां कहे बिना काम नहीं चलता और वही कैदी सब से अच्छा तथा तीसमारखां समझा जाता है जो अधिक से अधिक गालियों और भद्दी भाषायुक्त बातचीत करने में निपुण हो। बल्लू ने देखा कि कैदी लोग खास कर टट्टी होते समय तथा उसके बाद कुछ समय तक और तलाशी परेड होने के पहले और बाद में तथा रात के समय जब कि वे एक २ कमरे में ३० से लेकर ८० तक मुर्गियों की तरह ठूंस दिये जाते हैं, खास तौर पर अश्लील और नंगे होजाते थे। ऐसा जान पड़ता था मानों जिन अंगों को मनुष्य होश सम्हालते ही छिपाने की कोशिश करने लगता है उन्हीं को जबरदस्ती खोल-खोलकर दिखाने के कारण लज्जा के मारे वे अंग उन अभागों के अन्दर घुस गये थे जो उनकी बातचीत में शब्दों द्वारा अपना स्थान चिल्ला २ कर बतलाते थे कि 'लो हम भीतर हैं, हम नस नस के अन्दर घुसकर छिप गये हैं, अब तुम हमें कैसे देखोगे ? कैसे निकालोगे ?'

कहना न होगा कि बल्लू का परमेश्वर उसे धोखा दे गया। उसे तीन साल की सख्त कैद की सजा होगई।

* * * *

चेचक का टीका लगवाने के लिये लेजाते हुए किसी बच्चे को अगर किसी ने देखा हो, या एक डरपोक देहाती को जिसके शरीर में फोड़ा हो गया हो अस्पताल की ओर लेजाते हुए किसी ने देखा हो, या ग्राम-पाठशाला में गैरहाज़िर रहे हुए लड़कों को पंडित जी के सामने पकड़ कर लेजाते हुए किसी ने देखा हो; या कलकत्ते की काली माई के सामने किसी बकरे को लेजाते हुए किसी ने देखा हो; या (यदि पाठक

प्राचीन उदाहरण पसन्द करते हैं तो) द्रौपदी को दु:शासन द्वारा पकड़ी जाती हुई किसी ने देखा हो, तो वह आसानी से तथा पूर्ण रूप से बल्लू की पहले दिन की मानसिक स्थिति की कल्पना कर सकता है जब उसे तलाशी परेड के लिये खड़ा किया गया था। उसकी टांगें कांप रही थीं, उसके प्राण छटपटा रहे थे और वह अपने प्राण के अन्दर भगवान की पुकार कर रहा था, 'दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी . . ...' ऐसी ही कुछ वह पुकार थी लेकिन ......।

लेकिन उसकी पुकार बेकार जाते देखकर हमें सन्देह होने लगा कि या तो द्रौपदी के चीर-वर्द्धन की कहानी ही झूठी है या फिर आजकल भगवान ही बहरे होगये हैं या वे हिन्दी में की गई पुकार (उक्त भाषा का ज्ञान न होने के कारण) नहीं समझ पाते। अस्तु 'मंगाई थी हंडी ले आये तवा' वाला मामला होजाता है और बेचारे भक्तगण 'नमाज़' के लिये जाते हैं मगर 'रोज़े' गले में डालकर ले आते हैं।

जो हो, बेचारा बल्लू उस दिन तो इतना सिटपिटाया कि उससे परेड ठीक ठीक न करते बनी। जांघिया उतारने के स्थान पर वह उसे और कसकर बांधने लगा और कुर्ता उतारने के स्थान पर कम्बल ओढ़ने लगा। नया रंगरूट समझकर पहले तो कृपा करके उसे शुद्ध गालियों द्वारा समझाने की कोशिश की गई मगर इस पर भी जब उसके कूढ़ मगज़ में वह साधारण सी परेड न उतरी तो दो-चार धौल-धप्पों द्वारा उसे वह संसार की सर्वोत्तम परेड सिखाई गई। ऐसे मौकों पर आप जानते ही हैं कि काम अक्सर सोलह आने की जगह पर सत्रह आने होजाया करता है, अस्तु बेचारे बल्लू की लंगोटी भी खुल गई और वह बिल्कुल नंगा होगया। दुनिया का अन्धेर देखिये कि बहुत बढ़िया—एक आना ज्यादा—परेड करने पर भी उसको गालिया मिलीं। 'साले हरामज़ादे! सम्हाल उसे! शरम नहीं आती तुझे? नंगा होगया, क्यों बे?'

बेचारे बल्लू ने झटपट लंगोटी सम्हाल ली और किसी प्रकार

उस दिन की परेड समाप्त हुई। जेल बन्द होने पर बल्लू चुपचाप कम्बल में मुंह ढककर गरम गरम आंसुओं द्वारा अपने अपमान और दुर्दशा को धोने की चेष्टा करने लगा, परन्तु शायद उसे यह नहीं मालूम था कि जेल उस स्थान का नाम है कि जहां रोने के लिए—चुपचाप रोने के लिये—स्थान नहीं होता। निश्चय ही कवि ने 'गुर्बे दिल मत रो यहां आंसू बहाना है मना' यह पंक्ति जेल ही को उद्देश्य करके लिखी होगी और वह अक्षरशः सत्य है।

कहते हैं कि जब कमबख्ती किसी के पीछे पड़ती है तो हाथ धोकर उसके पीछे पड़ती है। बल्लू के सौभाग्य या दुर्भाग्य से हुसैना एण्ड कम्पनी उसी के कमरे में बन्द की गई। बल्लू की उस दिन की दुर्दशा देखकर उनके मन में कौवे बोल रहे थे वे उस पर अपने विचार प्रकट करने के लिये बड़े व्याकुल हो रहे थे। कोठा बन्द होते ही तथा अफसरों के बाहर जाते ही वे झटपट बल्लू के पास जा पहुंचे और उसका कम्बल खींच कर बोले, "वाह दोस्त, तुम तो पक्के उस्ताद निकले! साले जेलर को अच्छा दिखाया ······"

"वाह गुरू, बड़े घुटे हुए हो! खूब झेंपाया सालों को!"

"हं हं! अब क्यों बन रहे हो, यार!"

"खूब रहे, दोस्त! हम तो समझते थे कि तुम ······ हो, मगर तुम तो········निकले।"

आख़िरी और पहला वाक्य हुसैना का था जिससे सब कैदियों में हंसी की धारा बह निकली। 'इन्तिहाये नशा में आता है होश' चाहे इस सिद्धान्त के अनुसार हो या चाहे जिस कारण से हो बल्लू को उस वेदना की पराकाष्ठा में हंसी आगई और वह उठकर बैठ गया। फिर तो ऐसी सजीव वाग्धारा बह निकली कि जिसे अङ्कित करने का सौभाग्य न तो लेखक को है और न हिन्दी साहित्य को।

* * * *

(४)

कुछ नहीं सिर्फ एक वर्ष बाद की बात है:—

"नंगम नंग चवाल सौ।
लुच्चन लुच्च मचन्ना सौ।
नंगम दून दनन्ना सौ।
नंगम तिया........सौ।"

यह अपूर्व पहाड़ा जिसे बल्लू ने रचा था (और हमें विश्वास है कि यह अङ्कगणित शास्त्र में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा और गणित शास्त्र-वेत्ताओं में हलचल मचा देगा) बल्लू द्वारा कैदी-विद्यार्थियों को पूर्ण ताल-स्वर के साथ पढ़ाया जारहा था। श्रोतागण या विद्यार्थीगण हास्य के द्वारा इतनी वाह वाह कर रहे थे कि अन्त में जेलर को आकर मास्टर और विद्यार्थियों को पारितोषक देना पड़ा। पारितोषक पाने के बाद एकान्त होने पर गुरु-चेलों में इस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ हुआ:—

"वाह बेटा! कैसे मुँह बना रहा था!"

"मैं कहता हूँ कि साले को एक बार 'नंग पहाड़ा' याद करा देना चाहिये।"

"मज़ा तो आये, यार!"

"करो न फिर।"

"हां हां बल्लू उस्ताद! मज़ा आजाय यार! पढ़ाओ न सालों को 'नंग पहाड़ा' एक दिन।"

आखिर बहुमत से सालों को 'नंग पहाड़ा' पढ़ाने का दिन, मुहूर्त और ढङ्ग सोच लिया गया।

कहना न होगा कि अब भोला-भाला और लजीला बल्लू 'बल्लू उस्ताद' बन गया था। हुसैना अपनी सजा काटकर छूट चुका था और उसकी गद्दी पर बल्लू उस्ताद बैठा था। उस जेल का इतिहासकार लिखता है:—

जेल के गुंडा राज्य में बल्लू उस्ताद सब से बड़े हुए जिन्होंने अपने बाप-दादों की सल्तनत को कई गुना शानदार और विस्तृत बनाया। उन्होंने 'नंग पहाड़ा' की ईजाद की और दुवारों, अफसरों, वार्डरों तथा जन्म-कैदियों के हृदयों पर वे अपनी कीर्ति सुवर्ण अक्षरों में अङ्कित कर गये। इतना ही नहीं जेल की दीवारों और टट्टियों में भी उनके अमिट शिला-लेख जिन्हे यद्यपि कराल काल के दुष्ट हाथों ने बहुत मिटाने का प्रयत्न किया तो भी अब तक पाये जा सकते हैं। इत्यादि इत्यादि।"

इस प्रकार बल्लू उस्ताद की 'उन्नति' हुई। वह सारे कैदियों का परम प्रिय स्नेही, रोतों को हंसाने वाला, हँसतों को रुलाने वाला, और आकर्षण का केन्द्र था। सच पूछो तो वह राई से पर्वत बन गया था। वह स्वयं अपनी रंगरूटी हालत पर हँसा करता और मन ही मन कहा करता कि 'मैं भी कैसा हूश था! क्यों फिजूल में घबराता था!' आखिर हुसैना की परिभाषायें उसे अनुभव द्वारा सच्ची सिद्ध हुई। जरा जमाने का फेर देखिये कि एक दिन था कि खुद बल्लू उस्ताद दूसरो से घबराता था मगर आज सारी जेल और खास कर अफसर उससे घबराते थे। जेल की सारी सजायें वह "बूंद आघात सहें गिरि कैसे" के अनुसार या अगस्त ऋषि के समुद्र-शोषण की भांति पी गया था। अब दुनिया उससे घबराती न तो क्या करती?

बल्लू उस्ताद के लिये अब सारी दुनिया ही बदल गई थी। संसार के 'असार बन्धन' टूट चुके थे और वह सब को 'नग्न दृष्टि' से देखने लग गया था। खास तौर पर स्त्रियों के प्रति उसके विचार बड़े ही (क्या कहें? क्या?) हो गये थे। उसे प्रतीत होता था कि यदि बस चले तो सारे संसार के स्त्री-पुरुषों को सामने खड़ा करके तलाशी परेड करवा डाले। देख लें—सभी आंख खोल कर देख लें कि आखिर यह हल्ला है तो किस लिये? सिर्फ जरा सी बात के लिये। उसके लिये इतना पर्दा, शर्म, ढोंग-धतूरा इत्यादि करने की जरूरत ही क्या? इत्यादि, इत्यादि।

बल्लू उस्ताद का जीवन अब बड़ा ही आनन्दमय और मस्त हो गया था मानों वह हमेशा एक बोतल चढ़ाये रहता हो। वह चलता तो न जाने क्यों अक्सर उसका जांघिया खिसक कर नीचे आ गिरता और फिर उसे ऊपर चढ़ाने में बड़ी देर लगती। इसी प्रकार जब वह कैदियों के बीच में काम करता होता तो न जाने क्यों उसका जांघिया सामने की ओर सहसा फट जाता या उसमें छेद हो जाता और......। नहाने जाता तो अक्सर उसकी लँगोटी खुल पड़ती, फिर कोई कैदी उसे उठाकर दूर फेंक देता और वह तालियों और ठहाके के बीच में उस लँगोटी को पहले न उठाकर पहले उस कैदी की लंगोटी उतारने के लिये उसके पीछे दौड़ता। होली और दशहरा को बल्लू उस्ताद का 'ताण्डव नृत्य' होता। उसमें वह नकली और असली कई प्रकार की सामग्री द्वारा कैदियों के बीच में मनोरंजन का फुहारा छोड़ता।

आखिर वह दिन आ ही गया। कमिश्नर आया था। सारे कैदी लाइन में खड़े हुए थे। कमिश्नर के साथ साथ उसकी धर्मपत्नी और लड़की भी थी। जेल के अधिकारी उसके पीछे पीछे घबराते हुए चल रहे थे। देखता देखता कमिश्नर बल्लू उस्ताद की ओर बढ़ने लगा। बल्लू उस्ताद का शरीर कांपने सा लगा और हाथ से टिकट नीचे फेंक कर उसने दोनों हाथों से अपना शरीर बड़ी जोर से जल्दी २ खुजलाना शुरू किया मानों उसके सारे शरीर में हजारों बरें एक साथ काट रही हों। जेलर और डाक्टर यह ढंग देखकर आगे बढ़े मगर बल्लू उस्ताद ने झट से अपना कुर्ता उतार कर फेंक दिया और जब तक डाक्टर तथा जेलर कुछ करें (साहब भी मय स्त्रियों के वहां जा पहुंचा) तब तक बल्लू उस्ताद का जांघिया भी नीचे खिसक गया था और वह भयंकरता के साथ अपने..........अङ्ग खुजला रहा था मानों किसी ने किमाच की फली छीनकर लगादी हो।

साहब अस्पष्ट स्वर में कुछ चिल्लाया मगर उसकी स्त्री और

माल

"अरे आगया क्या ?" एक दुबले पतले कैदी ने एक दूसरे कैदी से पूछा। दूसरा कैदी जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता हुआ चला आरहा था। जल्दी जल्दी चलने से उसके पैरों की बेड़ियां आपस में एक दूसरे से उलझकर झन झन शब्द करती हुई उसकी भद्दी और मैली टांगों से टकरा रही थीं; उसका शरीर काला था और मोटा भी था। उसके गोल चेहरे पर काफी मांस चढ़ा हुआ था जिस पर एक अजीब चिकनापन चमक रहा था मानों उसके खूब तेल चुपड़ा हो। उसके चेहरे पर एक रहस्य नाच रहा था। उसने आंखों ही आंखों से कुछ इशारा सा करके सावधानी से चारों ओर को देखा। दुबले पतले कैदी का चेहरा खिल उठा। उसने अपने मैले दांत बाहर को निकाल दिये और एकदम आनन्द और भय से जल्दी मचाने लगा। "क्यों रे देवा, आगया ! क्या लाया ?" उसने दोहराया।

काले कैदी का नाम देवा था। वह रुका और अपने जांघिये के अन्दर हाथ डालकर उसने कुछ निकालना शुरू किया। उसकी नजर इधर-उधर ही घूम रही थी। पतला कैदी लगातार उसकी क्रिया की ओर देख रहा था। उसकी आंखों में आनन्द नाच रहा था, होंठ कांप रहे थे और वह अपना एक हाथ असन्तोष से आगे पीछे की ओर हिलाता था, मानों कह रहा था, 'अरे जल्दी निकाल रे ! जल्दी !'

आखिर देवा का हाथ जांघिये के बाहर निकलना शुरू हुआ। वह उकड़ूँ बैठ गया। दूसरे कैदी ने भी उसकी नकल की।

दूर पर कुछ कैदी बैठे हुए कुछ बातचीत कर रहे थे। उनके पास ही वार्डर बैठा हुआ ऊंघ रहा था। दीवार के उस ओर दूसरे नम्बर में कुछ हल्ला सा हो रहा था। एक वार्डर किसी कैदी को डांट रहा था। इधर देवा ने अपना हाथ जांघिये के बाहर निकाला। उसमें एक पोटली थी जिसे झट से उसने टांगों के बीच में दबा ली। दुबला पतला कैदी बेचैन हो उठा। उसने झपट्टा मारकर वह पोटली उसके हाथ से छीन ली और झट से अपनी टांगों के बीच में दबाकर बैठ गया।

"ठहर रे भरोसा ! साले मरा ही जाता है। धनीराम को तो आजाने दे........." देवा ने एक बार गाली दी। भरोसा दांत निपोर करके हि हि हि हि करने लगा।

"क्यों रे ले ही आया ! साले तू बड़ा हिम्मती है !" उसने कहा।

देवा अपनी तारीफ से फूल गया और मूंछ तरेरता हुआ बोला, "ऊंह दिया झपका और पार !" इतना कहकर उसने पार शब्द की व्याख्या करने के लिये अपनी आंखें मिचमिचाईं और अद्भुत मुंह बनाया। भरोसा उसके पार करने के ढंग को उसके चेहरे पर देखता हुआ प्रशंसा-सूचक हंसी हंसने लगा। देवा आगे बोला, "इतना ही क्या, मैं तो धड़ियों (पंसेरियों) माल लासकता हूं और किसी साले को पता न चले।"

"वाह रे जवान !" भरोसा को अन्धेर सा मालूम पड़ रहा था। उसने पूछा, "वार्डरों ने तलाशी नहीं ली रे ?"

"तलासी की मां.........(गाली).........तलासी लेकर भी वे क्या पावेंगे ? उनकी नाक के नीचे से उड़ा लाया", इतना कहकर देवा ने एक ओर को देखा। दरवाजे की ओर से एक तीसरा कैदी चला आरहा था। देवा ने कहा, "वह लो, धनीराम पंडित आगये !"

धनीराम गोरा और सुन्दर था मगर उसका सारा रंग उड़ गया था। उसकी सुन्दर आंखों से दीनता और पीड़ा झांक रही थी। शरीर तथा मन थका हुआ सा जान पड़ता था। वह आकर इनके पास खड़ा

हो गया।

"वाह पंडित जी ! हम कब से तुम्हारी बाट जोह रहे हैं," देवा ने उत्साहना देते हुए कहा. "देखो न आज कुछ माल लाया है। तुम कहते थे न कि देवा कुछ माल दिला दे, बहुत दिनों से मौज करने को जी कर रहा है !"

"हां भाई, जी तो कर रहा है। क्या करूं सूखी रोटियां खाते खाते किसका जी न ऊब जायगा ! बस वही रोटी और वही दाल. मेरी तो जान घबड़ा गई", इतना कहकर धर्नाराम उन्हीं के पास बैठ गया। उसकी थकी हुई आंखों में कुछ जीवन सा झलका और उसके मुरझाये हुए चेहरे पर कुछ हास्य सरीखा चमकने लगा।

देवा ने भरोसा की तरफ देखा। वह कहने ही वाला था, 'निकाल भरोसा' मगर क्या जाने भरोसा पहले ही उसकी बात समझ गया, क्योंकि उसने झट से पोटली अपनी टांगों के बीच से निकाल ली और उसे तीनों के बीच में रखकर खोलने लगा।

वे तीनों एक जरासी जमीन के हिस्से पर इस प्रकार एक दूसरे से सटे हुए बैठे थे कि उन्हें देखकर किसी बिल्ली की लाश को चींथते हुए तीन गीधों की याद आती थी। दूर पर बैठे हुए वार्डर ने ऊंघते हुए उनकी तरफ देखा। उसे कुछ शंका हुई, मगर उसके पास ही बैठे हुए दो कैदी लड़ने लगे। अस्तु वह उनको पीटने और गालियां देने में लग गया।

भरोसे ने जल्दी २ कांपते हाथों से पोटली खोलना शुरू की। उसकी नजर उसी पर गड़ी हुई थी। उसके मुंह में लार का ज्वार-भाटा हो रहा था। देवा सावधानी से गर्दन घुमाकर इधर उधर देख रहा था। धर्नाराम कभी पोटली की ओर तो कभी उन दोनों की ओर बारी बारी से ताकता जाता था। आखिर पोटली खुली और कोई काली सी चीज जैसा कि गाय का सूखा हुआ गोबर होता है निकल पड़ी। भरोसे ने झट से एक टुकड़ा तोड़कर अपने मुंह में रख लिया और उसे चबलाता हुआ

आनन्द से हंसने लगा। धनीराम ने अपनी भौंहें सिकोड़ते हुए पूछा, "यह क्या है?"

देवा अपने नाम का नाम उच्चारण करने वाला ही था कि इतने में दूर पर बैठा हुआ वार्डर गर्ज कर चिल्लाया, "क्यों रे हरामज़ादो! यह बैठे बैठे क्या कर रहे हो? चलो यहां से!"

देवा ने लपककर पोटली उठाली और उसे जांघिये में खोस कर खड़ा होगया। भरोसा जितना हंस रहा था उतना ही घबरा गया। धनीराम निराश होगया और उसके चेहरे पर वही दीनता मिश्रित थकावट लौट आई। तीनों अपराधी की तरह खड़े होगये। देवा मुस्कराता हुआ बोला, "कुछ नहीं वार्डर साहब, ऐसे ही बैठे थे।"

"चलो उधर से। वहां क्या कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे?"

"नहीं हुज़ूर, सलाह-वलाह हमें क्या करना है।" इतना कहकर देवा ने दोनों को आंख का इशारा किया और वह चल दिया।

धनीराम और भरोसा पीछे २ धीरे धीरे चलने लगे। देवा जल्दी जल्दी कदम बढ़ाकर गायब हो गया। चलते चलते धनीराम ने भरोसे से पूछा, "क्यों रे भरोसा, क्या था?"

"गुड़!" इस शब्द का नाम लेते ही भरोसा का चेहरा चमक उठा और उसका मुँह भीतर से पानी पानी हो गया। उसने अजीब दृष्टि से धनीराम की तरफ देखा।

"गुड़? कैसा था यह गुड़?", धनीराम ने कुछ आश्चर्य दिखाते हुए पूछा।

"अच्छा था और कैसा था," भरोसे ने आनन्द से उत्तर दिया।

(२)

धनीराम एक अच्छे घराने का युवक था। उसे एक खून के मामले में सात साल की सजा हुई थी। अपने घर में उसने जिन्दगी सुख से काटी थी, अर्थात् अच्छे कपड़े पहिने थे, दूध, शकर, घी, मिठाई इत्यादि इच्छानुसार समय समय पर खाई थी। देवा एक किसान था।

उसे चोरी में तीन साल की सजा हुई थी। किसान होने के कारण उसने सदा सर्वदा वह अच्छे भोजनों और कपड़ों का आदी न था, मगर मन चलने पर भी- दूध और गुड़ तो वह हमेशा भर पेट खा लिया करता था; खास कर गुड़ की तो उसके यहां खेती ही होती थी। भरोसा एक शहर का मजदूर था और मजदूर-धर्म के अनुसार वह खाने-उड़ाने में अच्छा अभ्यस्त था। अक्सर पैसे पाते पर चाट उड़ाना, शराब पीना, मिठाई खाना या सिनेमा देखना तथा बाद में दूसरी दफा या मजदूरी मिलने तक या तो आधा पेट रहना या महाजन से उधार खाना उसका सनातन धर्म था। उसे अपने कारखाने के एक अफसर को पीटने के कारण एक साल की सजा हुई थी।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकृति, पेशा और स्थिति वाले ये तीन आदमी त्रिपथगामिनी गंगा की भांति एक स्थान पर आकर मिल रहे थे। बाहर उनके जीवन के मार्ग भिन्न-भिन्न थे मगर जेल में एक ही मार्ग था—पतन! वे धड़ल्ले से पतन की ओर, विनाश की ओर जा रहे थे। सुधार करने के लिये समाज ने उन्हें जेल में बन्द किया था मगर जिन बातों के सुधार के लिये वे वहां रक्खे गये थे वे सुधरने के स्थान पर और भी तीक्ष्ण होती जा रही थीं। जैसे कि धर्मराम पहले की अपेक्षा अधिक क्रोधी और चिड़चिड़ा हो गया था; देवा पक्का चोर बनता जा रहा था और भरोसा बिल्कुल बेभरोसा हो रहा था। इसके सिवाय उनमें नये नये सुधार (?) जिनकी समाज को बिल्कुल आशा न थी, घटित हो रहे थे। उदाहरणार्थ धर्मराम अपना सनातन धर्म छोड़कर कट्टर सहभोजी—यहां तक कि जूठन-भोजी—बन रहा था। देवा ने अछूतोद्धार का काम अङ्गीकार किया था और वह भंगी का काम करने लगा था ताकि 'माल' चुरा कर मैले की गाड़ी में जेल के अन्दर ला सके और इस काम में भंगियों की सहानुभूति और सहायता प्राप्त कर सके। भरोसा तो पूरा 'परमहंस' बन गया था; उसे छूतछात, सड़े-गले, गन्दे, बासे, ऊंच-नीच इत्यादि का कोई विचार न रह गया था।

वह प्रत्येक भोज्य पदार्थ, प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक दशा में और प्रत्येक आदमी से लेकर खा जाता था।

कहते हैं कि हलवाई का लड़का कम मिठाई खाता है अर्थात् उसका मन मिठाई खाने को कम प्रेरित होता है। तात्पर्य यह है कि जो चीज़ सरलता से मिलने वाली होती है उसका आकर्षण कम प्रतीत होता है मगर इसके विपरीत जिस चीज के मिलने में—चाहे वह कितनी ही साधारण क्यों न हो—कोई अड़चन, बाधा या मुमानियत हो तो उसके लिये मनुष्य का मन बहुत छटपटाने लगता है। तभी तो किसी ने कहा है कि 'घर की खाड किरकिरी लागे, बाहर का गुड़ मीठा'। मन की इस विचित्र गति का प्रभाव जेल में देखने को मिलता है।

वर्षों, महीनों और सप्ताहों तक एक सी स्थिति, एकसा रहन-सहन, एकसा अरोचक जीवन और एकसा रद्दी भोजन इन तीनों कैदियों पर (सभी कैदियों पर) अपना प्रभाव दिखा रहा था। वही रूखी और सदरंग रोटियां, वही फीकी, काली और पतली दाल उनके सामने आती थी। धर्मराम को अपने घर की चुपड़ी चपातियों, घी, दूध और सब्जियों की याद हो आती, उसका जी रोने लगता, वे सूखी रोटियां उसके गले के नीचे उतरना कठिन हो जातीं। देवा उन्हें देखकर चटनी की याद करता जो कि उसकी स्त्री अक्सर पीस कर रोटियों के साथ उसे खेत पर दे जाया करती थी। वह भिन्ना उठता और बड़बड़ाता, 'साली सरकार थोड़ी थोड़ी चटनी क्यों नहीं दे दिया करती? इस दाल से तो चटनी ही अच्छी!' दूसरे कैदी उसकी असन्तुष्ट आवाज़ सुनते और सम्मति-सूचक सिर हिलाते तथा ठण्डी सांस लेकर कहते, 'अरे भाई, चटनी कौन दे? एक मिर्च ही मिल जाती तो अच्छा था। ज़रा जबान तो साफ हो जाती।' भरोसा मानों किसी की भी न सुनता था। उसे शहर की याद हो आती, जब कारखाने में वह दिन में कम से कम दस कप चाय पीता था, फिर सेव चबाता, रबड़ी खाता और होटल में जाकर कभी कभी मीठा भात और गोश्त खाता था। उसका मन घोटाले में पड़ जाता और वह

किसी एक चीज की श्रेष्ठता पर अपनी राय न दे सकता था तथा उन्हीं के ध्यान में सारी इन्द्रियाँ चुपचाप खाकर उठ खड़ा होता था।

इस प्रकार भोजन करते समय उनके पेट में चूहे कूदते और मन में भेड़िये लड़ते थे। जैसे जैसे वे अपना भोजन मशीन की तरह समाप्त करते और जब वे खाकर उठते तो यद्यपि उनका पेट भरा होता था मगर उनके मन में इतनी भूख होती थी कि यदि मिलता तो सारे संसार का भोजन वे खा डालते। अपने मन की इस भूख को कुचलते हुए वे काम में लग जाते, लेकिन रह रह कर उन्हें भोजन ही का ख्याल ही आता, तब वे ठण्डी सांस लेते और एक दूसरे की तरफ दीन तथा विवश दृष्टि से देखते। पास ही कोई कैदी-अफसर या बदमाश कैदी डींग हांक उठता कि आज उसने खूब माल खाया है; तब वे अपना काम बन्द करके उसकी ओर देखते और धीमी परन्तु आतुर आवाज में उससे पूछते 'क्या था यार?' मानो उस वस्तु का नाम ही सुनकर वे कृतार्थ हो जावेंगे और उनकी भूख चली जायगी। तब वह कैदी ऐंठ कर, आनन्द से फूलता हुआ अपने 'माल' का नाम, तादाद, आने का ढंग, वक्त, दिन, स्थान, इत्यादि का वर्णन करता। वह इतने विस्तार से बोलता कि छोटी छोटी बातों का वर्णन भी न छोड़ता, यहां तक कि वह उस माल को किस तरह खाया, कितने कौर में खाया, कितनी देर में खाया, बीच में पानी कितनी बार पिया या नहीं पिया, खाने के बाद कितनी डकारें लीं और बाद में मुँह पोंछा इत्यादि तक बतला जाता। न जाने उन बातों में क्या रोचकता होती थी कि सब लोग उन्हें बड़े ध्यान से सुनते थे; उस समय उनका मुंह बार-बार पानी से भर जाता जिसे वे अन्दर ही अन्दर खाली करते, उनकी आंखें चमकने लगतीं और वे एक विचित्र चेतना से चंचल हो उठते थे। किस्सा खतम होने पर कोई ठण्डी सांस लेता और कोई बोल उठता, 'यार हमें भी एक दिन कुछ माल खिलाओ', तब जवाब मिलता 'चौगुने पैसे लगते हैं, कोई ठट्ठा थोड़ा है? पकड़ जावे तो बेत खाना पड़ें।' चौगुने पैसों का नाम सुनकर

गरीब लोग सिर नीचा कर लेते और जो कुछ छोटी उमर के होते वे अपने को धीरे धीरे पतित कर देते तथा अपनी इज्ज़त बेचकर माल पाते। जिनके घरों में पैसा होता वे किसी प्रकार अपने घरों से पैसे मंगा कर माल मंगाने का प्रबन्ध करते। माल खाने वाले और माल का लेन-देन करने वाले बहुत बड़े आदमी समझे जाते थे। सभी उनकी चापलूसी और टहल किया करते तथा उनमें जो बदचलन होते वे अपनी इस शक्ति के द्वारा नौजवान और सुन्दर दिखाई देने वाले नौजवानों को भ्रष्ट करते थे।

धनीराम पहले तो ऐसे आदमियों से घृणा करता था परन्तु उनका 'माल' देखकर उसका जी मचलाने लगता था। मगर ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गये त्यों-त्यो उनके मन के भेड़ियों ने उसे तंग करना और उसी मार्ग पर घसीटना शुरू किया। अन्त में वह माल खाने वालों में शरीक हो गया। कहना न होगा कि इस पद को अंगीकार करते ही शेष सारी विभूतियां उसके चरणों में अपने आप लोटने लगीं जिनका वह समय समय पर उपयोग करने लगा।

(३)

देवा माल लाने में बड़ा उस्ताद था। सभी उसके माल लाने के साधन—भंगी, भंगी की गाड़ी, पेशाब का नाद इत्यादि जानते थे लेकिन तो भी अनजान बनकर आश्चर्य करते थे कि वह कैसे माल लाता है। जिन लोगों के पास पैसे नहीं थे और जिन्हें स्वभावतः माल खाने को नहीं मिलता था वे देवा पर जलते थे तथा 'मालदारों' पर भी घृणा प्रकट करते थे। वे उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार का दोषारोपण करते और किसी हद तक उनका अछूतों की भांति बाइकाट करने का प्रयत्न भी करते थे मगर सहसा उनमें से (विरोध करने वालों में से) कुछ खास उत्साही आदमियों का मुँह बन्द हो जाता और वे मालदारों तथा देवा का पक्ष लेने लगते। बाद में भेद खुलता कि मालदारों ने उन्हें कुछ चटा दिया है।

उस दिन जब देवा माल लाया और त्रिमूर्ति उसको खाने के लिये जमा होकर वार्डर द्वारा ताक दी गई तो वे घूम-घाम कर एक दूसरे स्थान पर जा डटे। वहाँ बैठते ही जल्दी २ रोटियाँ खोली गईं और आधा गुड़ धर्नीराम मालदार को दिया गया तथा आठवाँ भाग भरोसा को और शेष देवा के हिस्से में पड़ा। गुड़ को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह क्या चीज़ है। काला २ रंग और गीला २ वह चमक कर मानो अपने भक्षकों की बुद्धि पर बर्नार्ड शा की भाँति हँस रहा था। भरोसा तो फौरन आनन्द से आँखें मींचकर खाने लगा। देवा कहीं से चार रोटियाँ लाया था, वह उन्हें मल कर उनमें गुड़ मिलाने लगा तथा धर्नीराम उसे बाईं हथेली पर रखकर दाहिने हाथ से तोड़ने लगा।

धर्नीराम उसे तोड़ते समय अपनी नाक और भौं इस प्रकार सिकोड़ रहा था जिस प्रकार कोई कुनैन या 'कैस्टर आइल' पीने के पहले सिकोड़ता है। उसकी आत्मा और संस्कार उसे धिक्कार रहे थे मगर मन की भयंकर भूख एक पागल भेड़िये की तरह उसे 'खाओ! खाओ!!' कह रही थी। तोड़ते तोड़ते उसने पूछा, "यह कैसा गुड़ है रे देवा?"

"कैसा क्या, अच्छा है", देवा ने गुड़ मिली हुई रोटी का एक बड़ा कौर मुंह में भरते हुए कहा, "साले पैसे तो अच्छी चीज़ के लेते हैं मगर सस्ते से सस्ता माल लाकर हमें देते हैं। मैं कोई बाज़ार तो जाता नहीं हूँ।"

"हूँ!" कहकर धर्नीराम ने उसकी बात स्वीकार की और गुड़ का एक टुकड़ा तोड़ लिया मगर रुक कर कहा, "छू छू, देख तो रे इसमें कितने बाल और रुयें हैं". इतना कह कर उसने वह टुकड़ा देवा की तरफ़ बढ़ाया।

देवा अपने हाथ में एक कौर लिये हुए मुंह की तरफ़ ले जारहा था। इसलिये भरोसा ने 'देखूँ!' इस बहाने से वह टुकड़ा धर्नीराम के हाथ से छीन लिया और उसे ज़रा उलट-पुलट कर देखने का बहाना करके अपने मुँह में रख लिया: फिर ज़रासी उदासीनता और लापरवाही

सा भाव दिखाते हुए उसने कहा, "उं हूं ! इससे क्या होता है। कुछ ज्यादा खराब नहीं है।"

"अरे पंडित ! दाल-चावल सब हजम हो जाते हैं यहां। तुम मन चिनचिना मत करो।" इतना कहकर देवा अपने मुंह का कौर चबलने लगा।

"हूं !" सरीखा कुछ अस्पष्ट स्वर करके धनीराम ने वह गुड़ पुनः तोड़ना चाहा मगर उसकी टूटी हुई जगह पर नजर पड़ते ही वह चौंका और पुनः अधिक मुंह सिकोड़कर बोला, "अरे यह क्या है रे इसमें ?" इतना कहकर उंगली से उसने कुछ चावल सरीखी काली २ चीजें उसमें से निकालीं।

देवा उसकी ओर देखकर हंसा और बोला, "ह ह ह ! यह तो सुसलैंडी है, सुसलेंड़ी !" फिर वह आगे बोला, "तुम आंख मींचकर खाजाओ मैं कहता हूँ। इस तरह तो तुम्हारा मन बिचक जायगा।"

धनीराम ने इस बार फिर वही शब्द किया और गुड़ को साफ करके वह थोड़ा थोड़ा खाने लगा और बोला, "साला किसकिसाता भी है !"

देवा ने कोई उत्तर न दिया। वह चुपचाप खाता रहा। भरोसा अपना गुड़ पहले ही खतम कर चुका था। अस्तु वह अपनी उंगलिया चाटता हुआ दोनों के मुंह की ओर देख रहा था।

पास ही से तीन-चार कैदी चले जारहे थे; उन्होंने इन्हें खाते हुए देखकर ठिठक कर पूछा, "क्या उड़ रहा है, पंडित ?"

इस प्रश्न पर तीनों खाने वाले ठठा कर हंस पड़े, मानों उनकी हंसी ने चिल्लाकर उत्तर दे दिया, 'माल ! माल !! माल !!'

बेचारे कैदियों के मुंह में पानी भर आया। एक के सिवाय सब उस भाग्यवान त्रिमूर्ति के पास आगये और 'क्या है ?' 'कैसा है ?' 'कितना था ?' 'कौन लाया ?' 'देवा ?' 'कब ?' इत्यादि निरर्थक प्रश्नों की बोछार करने के बहाने केवल आंखों ही के द्वारा अपनी तृप्ति

करने का प्रयत्न करने लगे।

वह कैदी, जो इनके पास नहीं आया था, दूसरे ही मार्ग पर गया। उसने दूसरे ही प्रकार से अपनी तृप्ति करने का प्रयत्न किया। वह सीधा वार्डर के पास पहुँचा और उसे लेकर उस स्थान पर आ पहुँचा।

विश्वामित्र इत्यादि मुनि लोग जब यज्ञ करते थे और राक्षस वहां पर आ पहुंचते थे तब उनकी जो दशा होती थी वही दशा इस त्रिमूर्ति की हुई। तमाशबीन जरा हटकर खड़े हो गये; भरोसा उचक कर खड़ा हो गया; देवा ने गुड़ मिली हुई रोटियां ढकने की कोशिश की मगर सफल न हुआ; अस्तु खड़ा हो गया और खाता ही रहा। शायद उसने सोचा कि माल अब जाता तो है ही इसलिये जितना बन सके खा लिया जाय। धनीराम हड़बड़ाकर उठा तो उसके हाथ से वह डली जमीन पर गिर पड़ी। तीनों सन्नाटे में खड़े थे तथा उनके चेहरे पर हवाइयां और मक्खियां दोनों उड़ रही थीं।

वार्डर ने झपटकर देवा के हाथ से रोटी का लड्डू छीन लिया और उसकी पीठ पर दो डंडे जमाये, भरोसा को एक लात मारी और धनीराम को शुद्ध भाषा में गालियां देने लगा।

तीनों चुप खड़े थे। भरोसा के मन में सन्तोष था। उसके दो कारण थे। पहला यह कि वह अपने हिस्से का सारा गुड़ भक्षण कर चुका था अस्तु निश्चिन्त था कि वह घाटे में नहीं रहा; दूसरा यह कि उसके दो साथियों ने स्वयं अधिक गुड़ ले लिया था अस्तु उसे उनके ऊपर ईर्षा हो रही थी और इसीलिये उनकी दुर्दशा पर हर्ष हुआ लेकिन शीघ्र ही इस विचार से कि 'हाय इतना गुड़ फिजूल गया' उसका मन दुःख की छाया से ढक गया।

देवा का हृदय भीतर ही भीतर हाहाकार कर रहा था। उसके तीन कारण थे। पहला यह कि वह पिटने से डर रहा था; दूसरा यह कि उसकी रोटी का लड्डू आधे से अधिक बाकी था और भरोसा अपना हिस्सा बिल्कुल साफ कर चुका था अस्तु डाह और पश्चाताप दोनों से

वह पीड़ित था; तीसरा कारण धनीराम के हाथ की डली थी जो बहुत बड़ी थी और जिसका व्यर्थ चला जाना उसकी आत्मा के लिये असह्य हो रहा था।

धनीराम की अवस्था विचित्र थी। वह उस बच्चे के समान था जो प्रसाद लेने के लिये मन्दिर में देर से पहुंचा हो। उसे अपने ऊपर, देवा के ऊपर, सभी के ऊपर झुँझलाहट आ रही थी। वह यह सोच सोचकर और भी दुःखी हो रहा था कि भरोसा ने अपना हिस्सा बिल्कुल खतम कर दिया है; देवा भी काफी खा चुका है सिर्फ उसने ही बिल्कुल नहीं खाया। हाय इतना गुड़ बिल्कुल बेकार गया।

जमीन में पड़े हुए गुड़ के विषय में न केवल इन तीनों की बल्कि सारे तमाशबीनों की (जो कि इस दृश्य में आनन्द अनुभव कर रहे थे) तथा मुखबिर की भी एक ही राय थी, 'हाय, इतना माल फिजूल गया! काश हमें मिल जाता!'

वार्डर ने थोड़ी देर तक गाली-गलौजपूर्ण जांच की। बाद में एक कैदी से वह गुड़ तथा रोटी का लड्डू उठवाकर और तीनों अपराधियों को गिरफ्तार करके वह पेशी कराने चला। आगे आगे वार्डर जा रहा था और पीछे पीछे कैदी चल रहे थे तथा सब से पीछे 'माल' लिये हुए कैदी चल रहा था। तमाशबीन दूर से ठहाका मारकर हँस रहे थे।

दफ्तर में पहुँचकर जब 'माल' पेश किया गया तो वार्डर आश्चर्य से भौचक्का रह गया। उसने देखा कि बड़ी डली के स्थान में छोटी डली और एक बड़े लड्डू के स्थान पर थोड़ा सा चूरा उस कैदी के हाथ में है।

"अरे तेरा बुरा हो?" वार्डर चिल्लाया, "साले ने जूठी रोटी और गुड़ खा लिया।"

मुर्ग़ दिल मत रो यहां आंसू बहाना है मना

"तड़ाक ! लप् ! धप् !" पाशविक बाजा बज उठा ! इन्हीं के साथ साथ अनुरूप संगीत भी गूंज उठा:—

"साले, बदमाश ! हरामज़ादा !"

वाद्य की भांति संगीत भी कर्कश और तीक्ष्ण था। इनकी उड़ान भाले की चोट के समान सीधी, तेज और सरल थी। परिणाम सभी को मालूम है।

जेल की दीवारों के अन्दर जब दो नये कैदियों ने प्रवेश किया, उसी समय की यह घटना है। जब रामदयाल और हरनारायन दो नये कैदियों ने इस नई दुनिया में प्रवेश किया तो अन्य चीजों के सिवाय उनका सब से अधिक ध्यान इसी बज्र संगीत ने आकर्षित किया। दोनों ने देखा कि एक कैदी के गालों, पीठ और सिर पर यह बाजा बजाया जा रहा था। जो बजाने वाला था वही गायक भी था। वह एक कांटेदार, छप्पर-मार्का, खिचड़ी मूंछों वाला, खाकी वर्दी धारी प्राणी था। उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं जो निरन्तर मुँह सिकोड़ने, पीड़ा देने, पीड़ा सहने और क्रोधित रहने के कारण पड़ गई थीं। उन झुर्रियों के बीच वाली चमड़ी में कहीं कहीं चेचक के से दाग थे और कहीं कहीं ऊंचे ऊंचे मुंहासे (फुन्सियां) थे जिनसे उसका चेहरा विचित्र ऊबड़-खाबड़ सा बन गया था। उसके चेहरे में दो ही चीजें खास थीं, एक तो ऊंची और आगे को निकली हुई नाक के नीचे कांटों के छप्पर के मानिन्द लटकने वाली मूछें, जिन्होंने उसके होटों को बिल्कुल ढक लिया था—दूसरी उसकी घनी

भौंहों के नीचे अन्धकार में चमकने वाली दो लाल, लाल, गोल आंखें, जो हमेशा सामने वाले को छेदती हुई सी जान पड़ती थीं। इस प्राणी का ठेठ शरीर हट्टा-कट्टा और ऐंठा हुआ था। उसका रंग यद्यपि गेहुंआ था मगर चेहरे पर भीषण भावों की निरन्तर क्रीड़ा के कारण उसका रंग काला रहा करता था। उसका नाम था देवीसिंह जमादार। यद्यपि वह सिर्फ वार्डर ही था मगर अपनी जल्लादी के कारण उसने यह उपाधि बिना किसी सरकारी हुक्म के सिर्फ गालियों और मारपीट के जोर से कैदियों ने जबरदस्ती प्राप्त कर ली थी। समझ में नहीं आता कि अधिकारियों ने इस उपाधि को क्यों स्वीकृत नहीं किया था। 'जमादार' के सिवाय कभी कभी कैदी उसे ठाकुर साहब, हुजूर, मालिक साहब इत्यादि नामों से भी पुकारते थे। निःसन्देह वह इन सम्बोधनों से प्रसन्न होता था और उन्हें अपना हक और उचित खिताब समझकर ही ग्रहण किया करता था।

रामदयाल और हरनारायन की ओर उसने भौंहें सिकोड़कर और कुछ क्रूरता से देखते हुए अपना काम जारी रखा:—

"चटाक्! गद!"

"क्यों बे हरामजादे! साले........!"

जिस कैदी को वह पीट रहा था वह एक दुबारा था। उसका नाम था मंगू। उसके मुंह से यद्यपि 'नहीं हजूर! नहीं जमादार साहब! इत्यादि' दया-प्रार्थना के अमोघ वाक्य निकल रहे थे मगर उसकी आकृति से ऐसा जान पड़ता था कि वह इस प्रकार के पाशविक संगीत का आदी है और बड़ी लापरवाही के साथ वह इसे ग्रहण कर रहा था। दुबारे का शरीर नाटा था और रंग सांवला। उसकी एक आंख फूटी हुई थी जो सब से पहिले ध्यान आकर्षित करती थी। उसकी दूसरी आख (कौन जाने शायद स्वतन्त्रता और एकतन्त्रता मिल जाने के कारण) कुछ बड़ी और ऊपर को उभरी हुई सी जान पड़ती थी। उसका चेहरा गोल और चौड़ा था और उसका मुंह भेड़िये की तरह अधिक फटा हुआ था जिसके अन्दर मैले, भद्दे और बड़े बड़े दांतों की पल्टन अस्त-व्यस्त खड़ी थी।

रामदयाल और हरनारायन इस व्यापार को देखने के लिये अपने आप ठिठक गये। वे पिछले दिन, रात ही को, जेलखाने में आये थे और तब से उन पर जो बीती थी तथा उन्होंने जो कुछ भी देखा था उनसें यह दृश्य सब से अधिक आकर्षक था। उनका हृदय कल से क्रोध और झुंझलाहट से भर रहा था परन्तु यह दृश्य देखते ही उन्हें दया आगई। उन्होंने करुणापूर्ण दृष्टि से दुबारे की ओर देखा। दुबारे ने, जो कि अपने सिर पर दोनों हाथों की ढाल रक्खे हुए बैठा था, अपनी कुहनी के नीचे से झांक कर उनकी ओर देखा और अजीब तरह से आंख सिकोड़ कर तथा दांत दिखाकर उनका मूक स्वागत किया। दोनों भाई उनकी दृष्टि का अर्थ न समझ सके और इस बात पर आश्चर्य करने लगे कि यह आदमी कैसा है जो इस प्रकार गाली खाने और पिटने पर इतना शांत है। इसी समय देवीसिंह वार्डर ने उनको खड़े देखकर ललकारा, "क्यों रे नालायको! यहां कैसे खड़े हो? अरे नम्बरदार कहा गया? इसकी...... (गाली) यह साला करता क्या है? ये नये कैदी मारे मारे फिर रहे हैं।"

'नालायको' नामक गाली दोनों भाइयों के हृदयों में तीर की तरह चुभ गई थी। वे उसका कुछ प्रतिकार करना ही चाहते थे कि इतने में नम्बरदार दौड़ता हुआ आया और दोनों के धक्का देता हुआ बोला, "चलो रे, यहां कैसे रह गये? चलो! चलो काम पर।"

"अबे साले, तू इन्हें कैसे छोड़ गया?" जमादार ने भीखू को छोड़कर नम्बरदार का पल्ला पकड़ा।

"अजी जमादार साहब, ये लोग 'नवीन' हैं। अभी अभी पास करवाकर लिये जा रहा था। दस और भी थे। मैं आगे आगे चल रहा था; ये पीछे थे। ये यहीं रह गये। जब वार्ड में जाकर मैंने गिन्ती की तो दो कम निकले। मैं खुद ढूंढता आ रहा था कि कहा रह गये। अभी नये आदमी हैं। कायदा-कानून से वाकिफ नहीं हैं।"

"और तू तो है वाकिफ? फिर ये पीछे कैसे रह गये? जेलखाना है या तमाशा? किसी दिन कोई इसी तरह भाग भी जायगा।"

"अब ख्याल रक्खूंगा, जमादार साहब। चलो रे! उल्लू की तरह क्यों खड़े हो गये थे? चलो!" इतना कहकर वह उन्हें धक्का देता हुआ ले चला।

रामदयाल और हरनारायन बड़े ही स्वाभिमानी किसान थे। कभी किसी की टेढ़ी बात सुनने का अभ्यास उन्हें नहीं था। वे सिर्फ 'रे' कहने पर लठ मार देते थे। एक स्वाभिमानी सैनिक के लड़के होने के कारण (जो लड़ाई में बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया था) वे स्वयं वैसे ही लड़ाकू और तेज़ मिजाज़ थे। उनकी वृद्धा मां भी वैसी ही थी। यद्यपि वे जेल में पहली ही बार आये थे मगर जेल में आने के काम वे कई बार कर चुके थे। किसी ने जरा चूँ की, किसी ने अपमान-सूचक शब्द कहा, किसी ने अनधिकार चेष्टा की कि बस उन्होंने उसके हाथ-पैर तोड़ दिये। उनमें क्षमा नाम की वस्तु का बिल्कुल अभाव था। वे स्वयं सब के साथ उचित और सभ्य व्यवहार करते थे और साधारणतय: बड़े ही हँस-मुख और मृदु भाषी थे मगर किसी ने शिष्टाचार के बाहर कदम रक्खा कि उनका रंग पलटा। वे तुरन्त ही भयङ्कर हो उठते और मारपीट कर बैठते थे। इतना ही नहीं किसी दूसरे पर भी अत्याचार और अपमान होते उनसे नहीं देखा जाता था। वे झट से पीड़ित का पक्ष लेकर पीड़क के ऊपर पिल पड़ते थे। इस प्रकार अक्सर उनके हाथों से 'अपराध' (?) होते रहते थे और कभी कभी जब मामला कुछ अधिक गम्भीर हो जाता और उसकी खबर पुलिस वालों को लग जाती तो सौ-पचास रुपये देकर उन्हें अपनी जान बचाना पड़ती थी।

इस बार सौ-पचास रुपयों से काम चलना कठिन था क्योंकि उन्होंने सरकारी आदमी को पीट दिया था। वह अफसर अमीन था और झगड़ा मालगुजारी के सिलसिले में हुआ था। इन दोनों भाइयों को प्रायः गांव से सम्बन्ध रखने वाले सभी अधिकारी जानते थे और उनको भूलकर भी गालियां नहीं देते थे मगर यह अमीन नया ही आया था और जाति का मुसलमान था। उसका स्वभाव भी क्रोधी और अशिष्ट

"अब ख्याल रक्खूंगा, जमादार साहब। चलो रे! उल्लू की तरह क्यों खड़े हो गये थे? चलो!" इतना कहकर वह उन्हें धक्का देता हुआ ले चला।

रामदयाल और हरनारायन बड़े ही स्वाभिमानी किसान थे। कभी किसी की टेढ़ी बात सुनने का अभ्यास उन्हें नहीं था। वे सिर्फ 'रे' कहने पर लठ्ठ मार देते थे। एक स्वाभिमानी सैनिक के लड़के होने के कारण (जो लड़ाई में बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया था) वे स्वयं वैसे ही लड़ाकू और तेज़ मिजाज़ थे। उनकी वृद्धा मां भी वैसी ही थी। यद्यपि वे जेल में पहली ही बार आये थे मगर जेल में आने के काम वे कई बार कर चुके थे। किसी ने जरा चूँ की, किसी ने अपमान-सूचक शब्द कहा, किसी ने अनधिकार चेष्टा की कि बस उन्होंने उसके हाथ-पैर तोड़ दिये। उनमें क्षमा नाम की वस्तु का बिल्कुल अभाव था। वे स्वयं सब के साथ उचित और सभ्य व्यवहार करते थे और साधारणतय: बड़े ही हँस-मुख और मृदु भाषी थे मगर किसी ने शिष्टाचार के बाहर कदम रक्खा कि उनका रंग पलटा। वे तुरन्त ही भयङ्कर हो उठते और मारपीट कर बैठते थे। इतना ही नहीं किसी दूसरे पर भी अत्याचार और अपमान होते उनसे नहीं देखा जाता था। वे झट से पीड़ित का पक्ष लेकर पीड़क के ऊपर पिल पड़ते थे। इस प्रकार अक्सर उनके हाथों से 'अपराध' (?) होते रहते थे और कभी कभी जब मामला कुछ अधिक गम्भीर हो जाता और उसकी खबर पुलिस वालों को लग जाती तो सौ-पचास रुपये देकर उन्हें अपनी जान बचाना पड़ती थी।

इस बार सौ-पचास रुपयों से काम चलना कठिन था क्योंकि उन्होंने सरकारी आदमी को पीट दिया था। वह अफसर अमीन था और झगड़ा मालगुजारी के सिलसिले में हुआ था। इन दोनों भाइयों को प्रायः गांव से सम्बन्ध रखने वाले सभी अधिकारी जानते थे और उनको भूलकर भी गालियां नहीं देते थे मगर यह अमीन नया ही आया था और जाति का मुसलमान था। उसका स्वभाव भी क्रोधी और अशिष्ट

था। संक्षेप में यह हुआ कि उसने हरनारायन को साला कह दिया। बस हरनारायन ने अपनी चिर-संगिनी लाठी के द्वारा उसका एक हाथ तोड़ दिया और सिर फोड़ दिया। अमीन के आदमियों ने उसे चारों ओर से मारना शुरू किया और एक ने तो बन्दूक उठाकर उसकी टांगों में मार दी। इसी समय रामदयाल ने अपने बड़े भाई को घायल और पिटते हुए सुनकर दौड़कर अपनी लाठी उठा ली और उससे उसने न केवल अमीन के सारे आदमियों को मार गिराया बल्कि उनकी बन्दूक भी छीन ली।

मुकदमा चलने पर दोनों को तीन तीन साल की सख्त कैद हुई।

इस प्रकार की मनोवृत्ति वाले ये दोनों भाई जेल के अपमानपूर्ण वायुमण्डल में आकर सहसा आश्चर्यचकित और क्षुब्ध हो उठे थे। छुबारे पर मार पड़ते देखकर तथा उसको शान्ति से अविरोध सहन करते देखकर वे आश्चर्य और क्रोध से खड़े होकर वह काण्ड देख ही रहे थे कि उसी समय उनको भी नालायक की उपाधि मिल गई। नम्बरदार जब उन्हें धक्का देते हुए ले चला तो वे पीछे लौट लौटकर जमादार की तरफ ज्वलन्त आंखों से देखते हुए चले, जिस प्रकार दो क्रुद्ध सिंह जा रहे हों। यद्यपि उन्हें क्रोध आया मगर आज वे हमेशा की आदत के अनुसार उस क्रोध को बुझाने में समर्थ न हुए। न जाने किस अज्ञात शक्ति ने उनके अंगों को जकड़कर लुंज सा कर दिया। वे भीतर ही भीतर तड़फड़ाये, भभके और उछले परन्तु बाह्य अंगों ने कोई हरकत न की। एक बार तो उन्हें ऐसा लगा कि शेर की तरह झपटकर उस आदमी की मूछें उखाड़ डालें लेकिन उनके पांव न हिले। वे गुर्राते हुए नम्बरदार के साथ चले और इसी कारण उनको उसके धक्के—जो दूसरे समय बड़े ही असह्य होते—न मालूम पड़े। वे अपनी इस अज्ञात बेबसी को न समझ सकने के कारण और भी अधिक झल्ला उठे। उन्होंने जमादार पर अन्तिम नजर फेंकते हुए मन ही मन में कहा, 'अच्छा तुझे नालायक का मजा न बतलाया तो कहना!'

जमादार पुराना खुर्राट था। उसने ऐसे बहुत से जंगलियों को पालतू बनाया था। वह उनके चलने के ढङ्ग और आंखों को देखकर दुबारे को सुनाता हुआ बोला, "साले बड़े अकड़ू दिखते हैं! हूं! अच्छा बेटा! मेरा नाम देवीसिंह है। सारी अकड़ नीचे के रस्ते से न निकाल दूं तो मेरा नाम!"

दुबारा खड़ा होकर आनन्द से अपनी एक आंख नचाता हुआ चापलूसी के स्वर में बोला, "हां साहब, साले दिखते तो हैं उजड्ड। सब मालूम पड़ जायगी। यह जेलखाना है।"

जमादार ने कुछ सोचते हुए सिर्फ 'हूं' कहा। दुबारा बोलता चला गया, "वे दो आये थे न छः साल पहिले। क्या नाम था उनका? देखो, देखो. हां लक्खन और गजराज! उनकी सारी शेखी धूल में मिल गई थी।" इसके बाद दुबारे ने आनन्द से चमकते हुए चेहरे से जेल की छः साल पुरानी घटना का वर्णन शुरू कर दिया जिसमें दो बलवान और तेज मिजाज तथा स्वाभिमानी राजपूतों को मार-मारकर भुत बनाने का हाल था। जमादार अपनी भौंहें सिकोड़ता हुआ तथा आनन्द और गौरव प्रदर्शित करता हुआ वह कई बार सुना हुआ, स्वयं किया हुआ किस्सा सुनने लगा। ऐसी कहानियों को वह बड़ी शान के साथ सुना करता था और इसमें उसकी पशुता और निर्दयता भी दूनी हो जाती थी। कैदी लोग अक्सर उसकी चापलूसी करने के लिये उसको उसी की करनियां तथा जेल के निर्दय अलिखित इतिहास के पन्ने सुनाया करते थे। उस समय उन दोनों को वहां पर हिलमिलकर बातें करते हुए देखकर यह कहना कठिन था कि अभी अभी थोड़ी ही देर पहले इनमें से एक दूसरे को अपमानित और ताड़ित कर रहा था। नये आये हुए एंठबाज मनुष्यों की ऐंठ देखकर दोनों अपना सम्बन्ध भूलकर थोड़ी देर के लिये इस प्रकार एक हो गये थे जिस प्रकार दो लड़ते हुए सांप किसी आदमी के आजाने पर एक हो जाते हैं और उस पर झपटते हैं। उनकी ऐंठ देखकर जमादार का रोब अपमानित हो उठा था अस्तु

वह उनको मुत बनाकर अपने गेट की धाक अमिट रखने की तैयारी कर रहा था तथा दूसरा अपने ऊपर किये गये दमनों और अत्याचारों का बदला उन लोगों से लेना चाहता था जो उसकी अपेक्षा अपने को अधिक सम्मानवान और स्वाभिमानी समझते थे।

(२)

दोनों कैदियों को पहले-पहल चक्की में दिया गया। उन्हें प्रत्येक को पन्द्रह सेर पीसने को दिया गया। दोनों ने उस तीस सेर अनाज की राशि की ओर देखा फिर उस खड़ी चक्की की ओर देखा। उनका मन आश्चर्य और कौतूहल से भर गया. मगर ज्योंही उन्हें याद आई कि तीस सेर आटा पीसना पड़ेगा त्योंही वे उदास और हैरान हो गये. उनके चारों ओर दो दर्जन से अधिक चक्कियां घरघर करती हुईं चल रही थीं। प्रत्येक चक्की को दो आदमी मिलकर चला रहे थे; उन चक्कियों की सम्मिलित, एक सी अरुचिकर, दर्दनाक आवाज, किसी मरते हुए मनुष्य के गले की घरघराहट के समान, उन मट्टी, आटे और धूल से ढकी हुई दीवारों से टकराकर टुकड़े २ होकर बिखरती जा रही थी। हवा में आटा उड़कर कुहरा सा बन रहा था और आटे, पसीने और घिसते हुए पत्थरों की कड़ी बू चारों ओर फैली हुई थी। यद्यपि बाहर की हवा ठण्डी थी मगर चक्कीखाने में उन परिश्रम करते हुए मनुष्यों के शरीरों से निकलती हुई गर्मी ने एक घोर, गला घोटने वाली और प्राणों को बेचैन करने वाली ऊष्णता भर दी थी। उस वायुमण्डल में आते ही दोनों किसानों के प्राण छटपटाने लगे।

दोनों ने चारों ओर को नजर डाली। करीब-करीब चालीस-पचास कैदी एक दूसरे के बिल्कुल समीप खड़े हुए चक्कियां चला रहे थे। उनके शरीर से निकली हुई गर्म भाप एक दूसरे को स्पर्श कर रही थी। उनके शरीर आटे से ढककर अद्भुत तमाशा बन रहे थे। उनके काले बालों पर आटे की तह पड़ी हुई उपमारहित थी। उनके चेहरे पर आटे का लेप पाउडर सरीखा मालूम पड़ता था। यहां तक कि उनकी पलकें

जमादार पुराना खुर्राट था। उसने ऐसे बहुत से जंगलियों को पालतू बनाया था। वह उनके चलने के ढङ्ग और आंखों को देखकर दुबारे को सुनाता हुआ बोला, "साले बड़े अकड़ू दिखते हैं! हूं! अच्छा बेटा! मेरा नाम देवीसिंह है। सारी अकड़ नीचे के रस्ते से न निकाल दी तो मेरा नाम!"

दुबारा खड़ा होकर आनन्द से अपनी एक आंख नचाता हुआ चापलूसी के स्वर में बोला, "हां साहब, साले दिखते तो हैं उजड्ड। सब मालूम पड़ जायगी। यह जेलखाना है।"

जमादार ने कुछ सोचते हुए सिर्फ 'हूँ' कहा। दुबारा बोलता चला गया, "वे दो आये थे न छः साल पहिले। क्या नाम था उनका? देखो, देखो. हां लक्खन और गजराज! उनकी सारी शेखी धूल में मिल गई थी।" इसके बाद दुबारे ने आनन्द से चमकते हुए चेहरे से जेल की छः साल पुरानी घटना का वर्णन शुरू कर दिया जिसमें दो बलवान और तेज मिजाज तथा स्वाभिमानी राजपूतों को मार-मारकर बुत बनाने का हाल था। जमादार अपनी भौंहें सिकोड़ता हुआ तथा आनन्द और गौरव प्रदर्शित करता हुआ वह कई बार सुना हुआ, स्वयं किया हुआ किस्सा सुनने लगा। ऐसी कहानियों को वह बड़ी शान के साथ सुना करता था और इसमें उसकी पशुता और निर्दयता भी दूनी हो जाती थी। कैदी लोग अक्सर उसकी चापलूसी करने के लिये उसको उसी की कृतियां तथा जेल के निर्दय अलिखित इतिहास के पन्ने सुनाया करते थे। उस समय उन दोनों को वहां पर हिलमिलकर बातें करते हुए देखकर यह कहना कठिन था कि अभी अभी थोड़ी ही देर पहले इनमें से एक दूसरे को अपमानित और ताड़ित कर रहा था। नये आये हुए ऐंठबाज मनुष्यों की ऐंठ देखकर दोनों अपना सम्बन्ध भूलकर थोड़ी देर के लिये इस प्रकार एक हो गये थे जिस प्रकार दो लड़ते हुए सांप किसी आदमी के आजाने पर एक हो जाते हैं और उस पर झपटते हैं। उनकी ऐंठ देखकर जमादार का रोब अपमानित हो उठा था अस्तु

वह उनको बुत बनाकर अपने गेह की धाक अक्षित रखने की तैयारी कर रहा था तथा दूसरा अपने ऊपर किये गये प्रहारों और अत्याचारों का बदला उन लोगों से लेना चाहता था जो उसको अपेक्षा अपने को अधिक सम्मानवान और स्वाभिमानी समझते थे।

(२)

दोनों कैदियों को पहले-पहल चक्की में दिया गया। उन्हें प्रत्येक को पन्द्रह सेर पीसने को दिया गया। दोनों ने उस तीस सेर अनाज की राशि की ओर देखा फिर उस खड़ी चक्की की ओर देखा। उनका मन आश्चर्य और कौतूहल से भर गया, मगर ज्योंही उन्हें याद आई कि तीस सेर आटा पीसना पड़ेगा त्योंही वे उदास और हैरान हो गये। उनके चारों ओर दो दर्जन से अधिक चक्कियां घरघर करती हुईं चल रही थीं। प्रत्येक चक्की को दो आदमी मिलकर चला रहे थे। उन चक्कियों की सम्मिलित, एक सी अरुचिकर, दर्दनाक आवाज, किसी मरते हुए मनुष्य के गले की घरघराहट के समान, उन मट्टी, आटे और धूल से ढकी हुई दीवारों से टकराकर टुकड़े २ होकर बिखरती जा रही थी। हवा में आटा उड़कर कुहरा सा बन रहा था और आटे, पसीने और घिसते हुए पत्थरों की कड़ी बू चारों ओर फैली हुई थी। यद्यपि बाहर की हवा ठण्डी थी मगर चक्कीखाने में उन परिश्रम करते हुए मनुष्यों के शरीरों से निकलती हुई गर्मी ने एक घोर, गला घोटने वाली और प्राणों को बेचैन करने वाली ऊष्णता भर दी थी। उस वायुमण्डल में आते ही दोनों किसानों के प्राण छटपटाने लगे।

दोनों ने चारों ओर को नजर डाली। करीब-करीब चालीस-पचास कैदी एक दूसरे के बिल्कुल समीप खड़े हुए चक्किया चला रहे थे। उनके शरीर से निकली हुई गर्म भाप एक दूसरे को स्पर्श कर रही थी। उनके शरीर आटे से ढककर अद्भुत तमाशा बन रहे थे। उनके काले बालों पर आटे की तह पड़ी हुई उपमारहित थी। उनके चेहरे पर आटे का लेप पाउडर सरीखा मालूम पड़ता था। यहां तक कि उनकी पलकें

और बरौनियां भी आटे से ढकी हुई थीं जिससे कभी कभी ऐसा मालूम पड़ता था मानो उनके नेत्र ही नहीं हैं। परन्तु वे बार बार अपनी आंखें मिचमिचाते थे, इसलिये यह शंका अधिक समय तक न टिक सकती थी। आंख मिचकाने के सिवाय वे बार बार नाक सुरकते थे क्योंकि आटा उनकी नाकों में घुस रहा था। उनकी नाक रोके नहीं रुकती थी। वे बार बार छींकते और अपनी नङ्गी बाहों से उस तरल पदार्थ को पोंछते जाते थे। उनके आटे से ढके हुए शरीर के स्थान स्थान से पसीने की धारें बहकर आटे पर, चक्की के ऊपर और जमीन पर गिर रही थीं। उस पसीने ने उनके शरीर पर जगह जगह पर लकीरें सी खींच दी थीं और आटे की छोटी छोटी गोलियां बनकर स्थान स्थान पर चिपक गई थीं। सरसरी नज़र से देखने पर ऐसा भास होता था मानों प्रेतो की या किसी विचित्र लोक की यह टुकड़ी क्रुद्ध होकर पृथ्वी में छेद करने के लिये किन्हीं घोर यन्त्रों को घुमा रही है।

रामदयाल और हरनारायन हक्के बक्के होकर यह दृश्य देखने लगे। उन्होंने देखा कि कोई कोई कैदी बड़ी लापरवाही से चक्की घुमा रहे थे। वे हंसते जाते और बातें करते जाते थे, मानों वे कोई बड़ा रोचक खेल खेल रहे हों। किसी किसी के चेहरे पर उदासीनता थी। और कोई कोई बड़े मनोयोग से काम करते जा रहे थे। ऐसे कैदियों के चेहरों से ऐसा प्रतीत होता था कि वे चक्की चलाते हुए किसी दूर देश की बात सोच रहे हैं। उनके हाथ-पांव चल रहे थे मगर उनका मन कहीं दूर पर घूम रहा था। कुछ बड़ी पीड़ा और कष्ट से चक्की चला रहे थे। उनकी सूरतें रोनी बनी हुई थीं। वे अपनी सारी शक्ति लगाकर उस पत्थर के भार को घुमा रहे थे। उसका एक २ चक्कर उनके शरीर की शक्ति के टुकड़ों को पीस पीसकर नीचे गिरा रहा था। वे अपने भीतर से, कोने कोने से शक्ति के टुकड़ों को ढूंढ ढूँढकर और समेट समेटकर लाते थे और उस निर्दय पत्थर को अर्पण करते थे, तब कहीं वह दो-चार बार जरा चैतन्यता से नाचता था मगर फिर उसकी चाल धीमी पड़ने लगती थी। तब वे

फिर अपने जीवन का एक सार भाग उसको देते थे। यहां तक कि उनके चेहरे पर निराशा, थकान और पीड़ा बहुत स्पष्ट हो उठती थी, तब वे अनाज की राशि की ओर देखते थे मगर उससे उन्हें और भी अधिक निराशा और पीड़ा होती थी। उन्हें ऐसा जान पड़ता मानों वह राशि घटने के स्थान पर और अधिक बढ़ती जा रही है। तब वे उसकी तरफ देखना बन्द कर देते थे। उनकी दशा उस मनुष्य के समान थी जो आसमान से लटकती हुई एक लम्बी रस्सी से नीचे उतर रहा हो। उसके हाथ थककर पीड़ा दे रहे हों और वह जब जमीन की ओर देखे तभी वह दूर—बहुत दूर दिखाई पड़ती हो।

दोनों ने इस दृश्य को देखकर सिहरते हुए एक दूसरे की ओर देखा, मानों आंखों ही आंखों में एक दूसरे से प्रश्न किया:—

"अब ?"

"अब ?"

इसी समय नम्बरदार की कर्कश आवाज़ हुई, "क्यों रे कैसे खड़े हो उल्लू सरीखे ? पीसते क्यों नहीं हो ? वहां क्या तमाशा देख रहे हो ? क्या यहां रंडी नाच रही है ? याद रखना अगर शाम के पहले सारा आटा नहीं पीसा तो मारे डण्डों के चूतड़ लाल कर दिये जायेंगे।"

दोनों के चेहरे लाल हो गये। उन्हें न जाने कैसा लगा, मानों उनके हाथ-पांव बांधकर उन्हें आग में भूना जा रहा हो। दोनों चुपचाप पीसने लगे। उन पच्चीसों चक्कियों के भैरव स्वर में उनकी चक्की का स्वर भी मिलकर एक रस हो गया। थोड़ी देर तक चक्की तेजी से चली मगर धीरे धीरे वह अटकती सी जान पड़ने लगी। उनके हाथ जलने लगे मानों उनमें गर्म गर्म धातु चिपका दी गई हो। तब उन्होंने उन हाथों को छोड़कर दूसरे हाथों से पीसना शुरू किया। चक्की फिर तेज हो गई जिस प्रकार बुझते हुए दीपक में किसी ने तेल डाल दिया हो। थोड़ी देर बाद वह हाथ भी जलने लगा। इस प्रकार वे हाथ बदल बदलकर आधे घण्टे तक पीसते रहे, यहां तक कि उनके दोनों हाथ लाल पड़ गये

और अन्त में उनमें छाले पड़ गये।

इसी समय नम्बरदार चिल्लाया. "क्यों रे साले, क्यों खड़ा हो गया?"

दोनों ने चौंककर देखा कि वह एक दीन मुख वाले कुछ दुर्बल कैदी को डांट रहा है जो अपनी एक हथेली को दूसरी पर रक्खे हुए खड़ा हुआ हांफ रहा था। उसने जवाब दिया. "अरे भाई, हाथों में छाले पड़ गये। कैसे पीसूं?"

"छाले पड़ जाये. चाहे जो हो जाय, पीसना तो तेरे बाप को भी पड़ेगा। जेलखाना है, कुछ मज़ाक नहीं है।"

"मुझसे तो न पिसेगा", कैदी ने निराशा से अपने हाथों की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

कैदी का इतना कहना था कि नम्बरदार ने बढ़कर उसके गाल पर एक थप्पड़ मारा। "साले! तेरे बाप का घर है क्या? कैसे नहीं पीसेगा?" वह चिल्लाया।

बेचारा कैदी रोने लगा। रामदयाल और हरनारायन को दया और क्रोध दोनों आये, मगर वे कुछ न बोल सके। किसी अज्ञात शक्ति ने उनके मुंह पर पट्टी बांध दी और वे भीतर ही भीतर छटपटाकर रह गये। उनके हृदयों में भय का भी संचार हुआ क्योंकि उनके हाथों में भी पीड़ा हो रही थी जो असह्य होती जा रही थी। छाले बढ़ रहे थे, शक्ति कम हो रही थी लेकिन अनाज ज्यों का त्यों रक्खा दिखाई देता था।

उस कैदी को रोते हुए परन्तु काम न करते हुए देखकर नम्बरदार ने चिल्लाकर पांच-छै धौलें उसकी पीठ पर जमाईं और भद्दी अश्लील गालियों से उस भीषण वायुमण्डल को एक बार बिजली की कड़क के समान चीर दिया। अभागा कैदी आंसू, पसीना और नाक टपकाता हुआ फिर से पीसने लगा। उसके पास वाले कैदी ने उससे कहा, "रोता क्यों है रे औरत की तरह?" मानो उसके रोने से उसका कोई नुकसान हो रहा था। कैदी ने कोई उत्तर न दिया, सिर्फ अपने हाथ की हथेली

उसको दिखला दी जिन पर बड़े बड़े छाले पड़ रहे थे उसने हथेली की ओर बड़ी लापरवाही से देखते हुए कहा, "इससे क्या हुआ दो दिन की तकलीफ है। फिर घट्टे पड़ जायँगे। यह देखो।" उसने अपनी हथेली उसकी ओर बढ़ा दी जिस पर बड़े बड़े घट्टे पड़े हुए थे। कैदी ने उसकी तरफ देखकर नीचा मुँह कर लिया और नाक पोंछता हुआ पीसने लगा। उसके चेहरे से ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसे विश्वास नहीं हुआ था कि चक्की कभी उससे पूरी पिस सकेगी।

रामदयाल और हरनारायन ने यह सब काण्ड देखा और सुना तथा इससे शिक्षा ग्रहण की। पहली यह कि जब तक बने पीसना चाहिये मगर गालियां नहीं खानी चाहियें। दूसरी यह कि घट्टे पड़ जायेंगे और फिर तकलीफ न होगी। इस आखिरी बात से उन्हें कुछ आशा हुई और वे नये उत्साह से पीसने लगे। धीरे २ उनके हाथों के छाले फूट गये और उनका पानी उनकी हथेलियों और चक्की के मुठिये में लिप गया। उनके मस्तक और सिर से पसीने की धारा बहकर उनके शरीर और चक्की पर गिरने लगी। उन्होंने अनाज की ओर देखा तो आधा भी नहीं पिसा था। उनकी हिम्मत टूट गई। हाथ ढीले पड़ गये। सारा बदन ढीला और गर्म होगया। उन्होंने एक दूसरे की ओर देखकर धीरे २ बातचीत करना शुरू की। रामदयाल ने कहा, "दादा रे, मुझ से तो अब नहीं पीसा जाता। क्या करूं ?"

"मेरा भी यही हाल है भाई ! क्या किया जाय ?"

"बन्द कर दो।"

"वह साला गाली देगा। क्या पता कहीं मार भी बैठे।"

"गाली देगा तो साले का सर इसी चक्की से फोड़ दूंगा।"

"अरे नहीं रे ! यहां हम अकेले हैं। ये सब मिलकर हमारी बड़ी दुर्दशा करेंगे।"

"उनकी ऐसी-तैसी। दो-चार को तो जान से मार डालूंगा। देखूं कौन पास आता है।"

"अरे नहीं भाई ! इनसे क्या फायदा ? वे मौत मारे जायेंगे हम। यह मुसीबत का घर है। धीरज से काम लेना चाहिये।"

इसके बाद वे फिर मनोयोग से पीसने लगे, यहा तक कि पन्द्रह सेर आटा उन्होंने पीस डाला। इसके आगे उनका शरीर न चल सका। वे अपने शरीर की पीड़ा से ऊबकर और थककर सारे भय भूल गये और पीसना बन्द करके एक ओर को बैठ गये। बैठे ही थे कि कर्कश आवाज सुनाई पड़ी:—

"क्यों रे कैसे बैठ गये ? पिस गया क्या ?" इतना कहकर नम्बरदार उनकी चक्की के पास आया, मगर आधा ही अनाज पिसा हुआ देख कर बोला, "अरे रोटी का वक्त होने आया और तुम बैठे हो ! फिर यह कब पिसेगा ?"

"रोटी खाकर बाद में पीस लेंगे," हरनारायन ने थके हुए स्वर में उत्तर दिया।

"और न पिसा तो। याद रखना हां ! सारी अकड़ निकल जायगी।"

"पीस लेंगे तुम्हें क्या करना है ? तुम्हें शाम के पहिले तीस सेर आटा मिल जायगा," रामदयाल ने गर्म होकर उत्तर दिया।

नम्बरदार ने उसकी ओर मुंह फाड़कर देखा, मानों उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब भी गर्मी बाकी है। "अच्छा देखा जायगा !" अनुभवी नम्बरदार ने आंखों से चिनगारिया निकालते हुए परन्तु अपने मन के भाव को दबाते हुए कहा। वह जाते जाते बोला, "हां, और देखना मोटा न पिसे वरना ठीक न होगा।" इतना कहकर वह उनकी ओर देखता हुआ चला गया। दो में से कोई कुछ न बोला। रामदयाल को इतना क्रोध आरहा था कि यदि उसका वश चलता तो वह नम्बरदार का सिर चक्की पर पटक देता।

नम्बरदार के चले जाने पर हरनारायन ने पश्चाताप के स्वर में रामदयाल को कहा, "उसे क्यों नाराज कर दिया भाई ? शाम तक कैसे

पिसेगा ?"

"मैं पीस डालूंगा ! तुम परवाह न करो ! चाहे प्राण चले जायें मगर किसी की गाली नहीं सुनेंगे ।"

सचमुच उस स्वाभिमानी और तेजस्वी नवयुवक ने कुछ तो अपने भाई की सहायता से तथा शेष स्वयं शाम तक पीस कर रख दिया। हरनारायन तो इतना थक गया था कि उसकी गर्दन तक ऊपर को न उठती थी। रामदयाल भी थका था मगर अपने काम की पूर्णता देखकर उसके थके हुए, पसीने और आटे से लिपटे हुए चेहरे पर सन्तोष, विजय और हर्ष चमक रहा था। वह उन्मादपूर्वक अपने भाई से कह रहा था, "देखो, कहा था न ? पिस गया सब ?" हरनारायन ने अपनी हथेलियों को ऊपर करते हुए कहा, "क्या पिस गया ? दम निकल गया। ऐसे कहां तक चलेगा ?" वह अपनी हथेलियों की ओर पीड़ा और करुणा भरी आंखों से देखने लगा। उनमें लाल लाल छाले पड़कर छिल गये थे। उनसे पानी सरीखा कुछ बह रहा था।

रामदयाल ने अपनी हथेलियां ऊंची करके देखीं। उनमें कई जगहों पर घाव होगये थे। सारी हथेलियां लाल होगई थीं जैसे कि गरम तवे पर रख दी गई हों। उसने लापरवाही से कहा, "ऊंह कल की कल देखी जायगी। एक बार घट्टे पड़े कि फिर कुछ न मालूम पड़ेगा।"

हरनारायन ने केवल ठंडी सांस ली और वह मुंह से कुछ न बोला। वह हथेलियों की ओर देखकर शायद पछता रहा था कि ये कैसी बुरी होगई हैं।

नम्बरदार ने उनके पास आकर पूछा, "क्यों पिस गया आटा ?"

हरनारायन ने कुछ उत्तर न दिया। वह केवल दीन दृष्टि से उसकी तरफ देखता रहा मगर रामदयाल ने ऐंठकर जवाब दिया, "हां पिस गया है। सम्हाल लो।"

नम्बरदार एक कड़ी दृष्टि फेंककर फलाता हुआ चला गया। उसने आटे को खूब उलट-पलट कर देखा, उसे तोला मगर कोई दोष न

पा सकने के कारण थोड़ी देर के लिये उसके चेहरे पर पश्चाताप की छाया पड़ गई। मगर फिर कुछ सोचकर उसकी आखें विचित्र प्रकार से चमक उठीं और वह धीमे परन्तु रूखे स्वर से घुरघुराया, "अच्छा। ठीक है।"

हमारे उपरोक्त दोनों किसानों ने घर पर परिश्रम का काम, जैसे कि पानी खींचना, हल चलाना, अनाज ढोना इत्यादि किया था मगर उस परिश्रम और इस परिश्रम में बड़ा अन्तर था। वहा उन्हें स्वतन्त्रता थी और वे अपने नौकर की सहायता भी ले लिया करते थे। फिर वह परिश्रम अपना था, आशामय था और था भयरहित। इधर यह परिश्रम अरोचक, परतन्त्र, और व्यर्थ तो था ही, साथ ही साथ इसके साथ जो आतंक और भय शामिल था उसने इसकी गुरुता को और भी अधिक घोर बना दिया था।

दूसरे दिन जब दोनों कैदी सोकर उठे तो उनके शरीर में कठिन पीड़ा होरही थी। खास कर हथेलिया तो ऐसा दर्द कर रहीं थीं मानों उन्हें किसी ने कुचल डाला हो। चक्की पीसने से उन्हें भूख भी कड़ी लगी थी मगर काफी भोजन न मिलने के कारण उन्हें कुछ कमजोरी भी मालूम पड़ रही थी। जब वे चक्की-घर की ओर जाने लगे तो उनके हृदय दहल गये। घबराकर उन्होंने एक दूसरे की ओर देखकर मन ही मन पूछा, "अब ?"

आज रामदयाल का उत्साह न जाने कहां लोप होगया था। उसका चेहरा कुछ पीला सा पड़ गया था। वह बोला, "दादा, आज तो मेरी देह में बड़ा दर्द है।"

"मेरा तो बुरा हाल है रे! आज क्या होगा ?"

रामदयाल कोई उत्साह न दिला सका। वह हथेलियां दिखाता हुआ बोला, "देखो तो दादा! ये कैसी सूज गई हैं ? आज कैसे पीसा जायगा ?"

नम्बरदार ने इनके पास तीस सेर गेहूँ रखते हुए कहा, "हूँ, आज

पीसिये।" इतना कहकर वह रहस्यमय मुस्कराहट फैलाता हुआ चलने लगा, मानो वह नजर ही से कह रहा था, 'मुझे सब मालूम है। आज तुम्हारी अकड़ निकल जायगी।' हरनारायन उसकी ओर दीनतापूर्ण दृष्टि से देखने लगा। रामदयाल ने नीचा सिर कर लिया। वह लज्जा और पश्चाताप से जला जारहा था। उसके मन में हाहाकार होरहा था, 'आज मार लिया दुश्मन ने! आज फंस गये कसाई के फन्दे में।'

दिन भर उन्होंने परिश्रम किया, पसीने के साथ साथ गुप्त आंसू भी बहाये मगर शाम तक काम पूरा न हो सका। वे थककर पीड़ा से कराहते हुए बैठ गये। कल वाला दुर्बल कैदी लगातार पिट रहा था। वह कभी रोता, कभी पीसता, और कभी बेहाल होकर गिर पड़ता था। इस दृश्य ने भी इन दोनों के शरीर में शक्ति का संचार नहीं किया। उसे देखकर अपने स्वभाव के अनुसार उन्हें उस पर दया नहीं आई। उनके हाथ बिल्कुल छिल कर बेकाम हो गये थे। उनसे खून झलझला रहा था। वे उस दृश्य को देखकर अपने भविष्य के विषय में कांप रहे थे, 'अब आया नम्बरदार, अब दी गाली, अब मारा।' मगर नम्बरदार दूर ही दूर रहा। वह उनके पास तक न आया। वह सब समझ रहा था। आज वह कस कर पंजा मारना चाहता था। निराशा और पीड़ा के कारण रामदयाल उत्तेजित हो उठा। वह धीरे से अपने भाई से बोला, "दादा, नहीं पिसा तो नहीं सही। हमने कोई कसर नहीं उठा रक्खी। जब हमारे हाथ ही बेकाम हो गये हैं तो हम क्या करें?"

"नहीं रे, वह साला जरूर गाली बकेगा।"

"उसने गाली बकी कि मैंने उसे पटकनी दी; फिर चाहे जो हो।"

इसी समय काम समाप्त हुआ। नम्बरदार ने आकर इनका आटा देखा और देखते ही उसका चेहरा पैशाचिक आनन्द से चमक उठा। वह गुर्रा कर बोला, "अच्छा चलिये जनाब! आपको पेशी में चलना पड़ेगा।"

दोनों उसके पीछे पीछे चलने लगे, वह दुर्बल कैदी भी साथ था।

दिन भर पिटा था उस पर भी उसकी पेशी कराई जा रही थी। हरनारायन का हृदय अज्ञात भविष्य की आशङ्का से कांप रहा था। रामदयाल के सिर से एक भारी बोझा उतर गया था। वह मन ही मन खुश होता चला जा रहा था कि 'चलो अच्छा हुआ गालियों से तो बचे। वहां अफसर के सामने अरज़ कर लेंगे। क्या अफसर देखेगा नहीं कि हाथ सूज गये हैं?'

रास्ते में इन्हें जमादार देवीसिंह मिल गया और नम्बरदार से बोला. "क्यों कहां ले जा रहे हो?"

"पीसते नहीं हैं साहब। मैं कुछ कहता हूँ तो अकड़ते हैं, लड़ने पर आमादा होते हैं।"

"अच्छा? हूँ! ठीक है। ले चलो", जमादार भी अपनी भौंहें सिकोड़ता और दांत पीसता हुआ उनके साथ हो लिया। भीखू दुबारा भी साथ हो लिया। उसकी एक आंख आनन्द के मारे गोलाकार सी घूमती हुई मालूम पड़ रही थी। वह कभी उन दोनों की ओर तो कभी जमादार की ओर देखता जाता था। चलते चलते उसने जमादार के कान में फुसफुसाकर कहा, "देखो साले कैसे अकड़ कर चलते हैं? इनकी सारी शान धूल में मिल जाना चाहिये साहब।" जमादार ने आंखे सिकोड़ कर 'हूं' कहा। इसके बाद दुबारा खिसककर इन दोनो के पास आया और फुसफुसाया, "घबराना नहीं पठ्ठो! कह देना कि यह साला नम्बरदार बदमाश है, गाली देता और मारता है और इसको जमादार ने सिखा दिया है। ये साले बड़े हरामी हैं।"

दफ्तर में पहुंचकर जमादार और नम्बरदार ने सलाम करके रिपोर्ट दी कि "साहब यह कैदी (पूरा काम नहीं करता)।"

अफसर गंजा और काला था। उस पर भी उसकी आंखें बिल्ली की सी थीं। उसकी दाढ़ी-मूछ सफाचट थी। उसने अपनी तेज़ और फटी हुई आवाज में पूछा, "क्यों बे बदमाश? मारो साले को" अफसर ने अपराधी के बयान सुनने के पहले ही फैसला दे दिया।

जमादार और नम्बरदार धड़ाधड़ उनके मारने लगे। कोड़ों की चोटकार से वायुमण्डल गूंज उठा। अफसर फिर बोला, "ले जाओ सालों को। अब काम न करें तो फिर लाना।"

दूसरी रिपोर्ट पेश हुई। इसमें दोनों कैदियों को कामचोर, मुफ्तखोर, मुंहजोर, बदमाश इत्यादि कहा गया था और यह सिद्ध किया गया था कि कैदी बहुत ही उदण्ड हैं और खतरनाक भी हैं। अफसर ने नीचे से ऊपर तक दोनों को बड़ी गम्भीरता से देखा। उसने अपना सिर हिलाया, आंखें सिकोड़ीं और सहसा एक भीषण छाया उसके चेहरे पर नाच उठी। वह बोला, "हूं! क्यों जी, क्या बात है?"

दोनों ने अपनी अपनी हथेलियां दिखाते हुए बड़ी नम्र भाषा में सच सच बात कह दी। अफसर की मुद्रा और भी भीषण और कठोर हो गई। वह क्षण भर चुप रहा, शायद यह सोच रहा था कि कौन सी सजा इन उदण्डों के लिये उपयुक्त होगी। इतने ही में नम्बरदार बीच में बोल उठा, "हज़ूर, कल इन्होंने पूरा काम कर दिया था मगर आज जान बूझकर इन्होंने काम नहीं किया कि देखें हमारा कोई क्या कर लेता है? मैं बोला तो मुझसे टर्रा कर बोले कि 'जा नहीं करते'।"

अफसर ध्यान से सिर हिलाता हुआ उनकी तरफ देखने लगा। रामदयाल सांवला और ठिगना था। उसका शरीर खूब ही गठा हुआ था। उसकी छोटी सी खोपड़ी का छोटा सा मस्तक चमक रहा था। आंखें बड़ी बड़ी, सुन्दर और स्वच्छ थीं। नाक सुडौल और दांतों की पंक्ति सफेद और स्वच्छ थी। उसका चेहरा तेजस्वी और आकर्षक था। वह चुपचाप एक टक अफसर की ओर देख रहा था। हरनारायन ऊँचे क़द का, गेहुआं और इकहरे बदन का जवान था। उसकी आंखें कुछ छोटी थीं। मस्तक चौड़ा था। नाक और दांत अपने भाई ही के समान थे। वह कभी अफसर की ओर तो कभी जमीन की ओर ताक रहा था। आखिर अफसर बोला, "देवीसिंह, इनके हथकड़ी लगाकर इन्हें टांगो तो जरा।"

देवीसिंह आनन्द से उछलता हुआ गया और दोनों को हथकड़ी लगाकर ऊपर को टंगने लगा। हरनारायन गिड़गिड़ा कर बोला, "हुज़ूर, माफ़ी दी जाय। कल काम पूरा होगा। अभी हम नये ही हैं।"

"हूं, हूं," अफ़सर बैठा ही बैठा फुंसता रहा। रामदयाल ने एक शब्द भी मुँह से न कहा।

हथकड़ी में टँग जाने के बाद अफ़सर ने उनकी टर्र निकालने का हुक्म दिया। जमादार और नम्बरदार ने उन्हें भरपूर मारा। कौन जाने उनकी टर्र निकली या नहीं। आख़िर अफ़सर के हुक्म से वे अन्दर ले जाये गये। कहना न होगा कि दोनों ने चुपचाप मार सह ली। हां, हरनारायन की आंखों से अपमान की बूंदें अवश्य बह रही थीं। रामदयाल का सांवला चेहरा संताप से लाल हो रहा था। भाई की आंखों की ओर देखकर वह सांप की तरह फुन्कार छोड़ रहा था। चलते २ अफ़सर ने कहा, "अब मत करना शेखी कभी! कल से पूरा काम करना। यह जेल है समझे। यहां सारी टर्र धूल में मिला दी जायगी। बदमाश कहीं के।"

(३)

"हुँ हूं" देवीसिंह जमादार ने मूछें ऐंठते हुए कहा, यद्यपि उसकी मूछें ऐसी थीं जो कभी भी ऐंठी नहीं जा सकती थीं। "ठीक होगये साले। दो-एक बार और मरम्मत हुई कि फिर चूं तक न करेंगे।" नम्बरदार केवल खिलखिलाकर हंस पड़ा। जमादार बोलता चला गया, "मैं तो पहले ही दिन इनको भांप गया था कि साले मग़रूरी हैं। आज बेटों को दशहरे की दाल याद होगई होगी। मेरा भी नाम देवीसिंह है। वो कस-कस कर हाथ लगाये हैं कि याद रहेंगे।" इतना कहकर उसने भीषण अट्टहास किया। उसका सिकुड़नदार चेहरा हंसी से फैलकर किसी सूखे हुए चमड़े की याद दिलाता था जो पानी से भीग गया हो और जिसे पकड़कर खींचा जारहा हो। उसकी आंखों से आनन्द की ज्योति निकल रही थी।

भीखू दुबारा जमादार की प्रत्येक बात पर सिर हिलाता और ठहाका मारकर हंसता था। वह आनन्द से नाच रहा था और उसकी एक आंख खुशी से चंचल होकर जल्दी २ मिचमिचा रही थी। उसे ऐसा लगरहा था मानों सारे संसार की लूट उसे मिल गई हो। वह बीच बीच में 'हां' 'हां' कहता जारहा था। आखिर उसे बोलने का मौका मिला, "खूब ठीक हुए साले। बहुत अकड़कर चलते थे। मैंने उन्हें समझाया था कि भाई यह जेलखाना है, यहां किसी की अकड़ नहीं चलती। मगर वे क्यों मानने लगे?" भीखू की गाड़ी चलती ही रहती यदि इसी समय दो-चार और कैदी वहां न आजाते। जिसने भी इस घटना को सुना वही मौका पाकर इसकी चर्चा करने लगा। वे कई गुट्टों में बंटकर अपने अपने मत प्रकाश करने लगे।

एक गुट्ट में इस विषय पर गर्मागर्म बहस हो रही थी कि दोनों को किस चीज से पीटा गया। एक ठिगना आदमी जिसकी आंखें बिल्कुल छेद सरीखी थीं और नाक चपटी थी हाथ फटकार फटकारकर कह रहा था, "मैं कहता हूँ सालों को जूते लगे हैं—पूरे पांच पांच सौ।"

"हां हां जूते—तीन जोड़ी जूते तो टूट गये हैं," एक दुबले पतले गोल खोपड़ी वाले ने कहा।

एक हट्टा-कट्टा कैदी बड़े रौब से बोला, "नहीं सालो, जूते नहीं लगे। बेत पड़े हैं बेत!"

नाटा कैदी झगड़ालू स्वर में बोला, "बेत कैसे लगेंगे जी? डाक्टर के बिना बेत कैसे लगेंगे?"

"डाक्टर की ऐसी-तैसी!" मोटे आदमी ने कहा और वे लड़ने लगे।

दूसरे गुट्ट का विषय इस प्रकार था:—

एक दुर्बल आदमी कह रहा था, "बेचारों को बहुत मारा।"

"हं हं तेरे बाप लगते होंगे," दूसरे ने ठहाका मारा।

"उन्होंने काम ही ऐसा किया था। नम्बरदार को मारने को दौड़े

ये जेलखाना है या मजाक ?" एक चौड़े मुंह वाला कैदी दांत पीस कर बोला।

"सालों की अकल ठिकाने आगई," चौथे ने कहा।

"क्यो जी मामला क्या था ? आदमी तो खराब नहीं दीखते ?" पांचवे ने जांच की।

"यहां तो सभी ईमानदार ही बसते हैं। अजी भले आदमी होते तो जेलखाने में क्यों आते ?" एक बदमाश ने उत्तर दिया।

"तो भी बेचारे बहुत पिटे," दुबले आदमी ने फिर दया की अपील की और करुणाजनक मुंह बनाया।

"हां पिटे तो बहुत," दूसरे ने ठण्डी सांस सी लेकर कहा।

"पर क्या किया जाय ? यह जेलखाना है। यहां किसी की अकड़ नहीं चलती," तीसरे ने अनेच्छित योग दिया।

इसी प्रकार अलग २ गुट्टों में चर्चा होरही थी। सभी आनन्द से इसकी चर्चा कर रहे थे। जब कभी उनमें से कोई पीटा जाता तो एक प्रकार की उत्तेजना सारे कैदियों के ऊपर छा जाती। वे चंचल हो उठते और उनका थोड़ासा समय उसी की आलोचना में कट जाता था। जो नीरस और अरुचिकर तथा एकसा जीवन उन्हें पीसता रहता था उसमें थोड़ा सा परिवर्तन होजाता था यद्यपि वह बड़ा ही पाशविक और पतन-कारी होता था; मगर वे इसी परिवर्तन का हृदय से स्वागत करते थे क्योंकि नीरसता से उनकी आत्मायें पिसी जाती थीं। वे परिवर्तन चाहते थे फिर वह चाहे कैसा ही क्यों न हो। उनकी दशा उन मरभुखों के समान थी जो कुत्ते का मास और गधे का मांस भी लड़-लड़कर खाते हैं। उनकी इस मानसिक दशा का एक कारण और था। वे जिस प्रकार के वायुमण्डल में जबरदस्ती रक्खे गये थे उसने उनको पतित कर दिया था। जेल में अनुशासन नाम की एक चीज है जिसने उनको पीट-पीट कर और निचोड़-निचोड़कर उनके हृदयों से सारी मनुष्यता निकाल ली थी। बात बात पर वे पीटे जाते थे, बात बात पर उन्हें गालियां, अपमान

और मार सहना पडती थी जिसका वे कोई प्रतिकार नहीं कर सकते थे। अस्तु उनके मन पर भयङ्कर चाण्डालवत सवार रहता था। वे अपने प्रति किये गये अत्याचारों का बदला किसी न किसी प्रकार लेना चाहते थे। वे अपने मन पर लदे हुए इस भयङ्कर भार को किसी न किसी प्रकार उतारकर फेंक देना चाहते थे। इसीलिये जब कोई कैदी किसी अफसर पर हाथ चला बैठता या कोई कैदी पीटा या सताया जाता तो वे पाशविक आनन्द से भर जाते थे। उनके हृदयों में खुजली सी चलने लगती और वे एक प्रकार से हलके हो जाते थे। यद्यपि वे आपस में एक दूसरे के मित्र थे मगर कुसमय आने पर वे एक दूसरे की दुर्दशा में हार्दिक आनन्द का उपभोग करते थे। 'अच्छा हुआ, साला खूब पिटा' केवल यही आवाज़ आनन्द से उनके हृदयों में गूंज उठती थी। बिरले ही कोई सच्ची सहानुभूति दिखाते थे। इसलिये उनकी तरफ किसी का ध्यान न होता था। अधिकांश जब किसी पिटने वाले के पास जाते तो बिल्कुल रङ्ग बदल देते। उसके सामने वे अफसरों को गालियां देते, श्राप देते और उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते थे यहां तक कि चोरी से उसके पास तम्बाकू इत्यादि पहुँचा देते थे। सच बात यह थी कि वे दोनों हाथों में लड्डू रखना चाहते थे। उनका व्यवहार बड़ा ही दुरंगा होता था।

वास्तव में वे किसी के भी मित्र न थे। विनाश देखकर उनको आनन्द आता था चाहे वह किसी का भी हो। वे जब किसी भले कैदी को देखते जिसमें स्वाभिमान, विद्या, सद्गुण इत्यादि होते थे तो वे उस पर जलने लगते थे। वे फिर उसको अपने धरातल पर खींचकर लाने का प्रयत्न करते थे क्योंकि उनसे यह नहीं सहा जाता था कि उन्हीं सरीखा कोई प्राणी इन मानवीय गुणों को कायम रक्खे जब कि वे सब खो चुके हैं। अस्तु वे पारस्परिक ईर्षा और द्वेष में रहा करते थे। उनकी ईर्षा इतनी बढ़ी हुई थी कि जब कभी वे बाहर दुनिया में आग लगने, पाला पड़ने, भूकम्प आने इत्यादि के भीषण समाचार सुनते

तो आनन्द से नाच उठते और कहते 'अच्छा हुआ। साला पूरा शहर क्यों न उजड़ गया ?' जब वे किसी झगड़े की बातचीत सुनते तो आनन्द से उछल पड़ते। उन्हें अफसोस होता 'अरे यार तो क्या वह आदमी जान से नहीं मरा ? च् च् !' इस प्रकार वे मनुष्य के प्रति, समाज के प्रति द्वेष और प्रतिहिंसा से भरे रहते थे।

यही हाल अफसरों का था। जिस अनुशासन के चक्र को वे इन अभागे प्राणियों के ऊपर घुमाया करते थे वही चक्र उनके सिरों पर भी बड़े अफसरों द्वारा घुमाया जाता था। उन्हें भी अपने बड़ों के सामने, बड़ों के द्वारा ही, अपमानित और लांछित होना पड़ता था। जो संतरी और छोटे अफसर होते थे वे बड़े ही निकृष्ट श्रेणी के मनुष्य होते थे। उनमें शिक्षा और सुसंस्कारों का अभाव रहता था। वे उन घरानों से आते थे जो प्रायः दरिद्री, पतित या अत्याचार-पीड़ित होते थे। अस्तु इन ओछे आदमियों को जेल में नौकरी मिलते ही एक नई दुनिया दिखती थी। वे देखते कि वहां पर वे एकतन्त्र शासक हैं। वहां सैकड़ों मूक प्राणी उनकी कृपा के भिखारी हैं। संक्षेप में वे अपनी स्थिति बिल्कुल परिवर्तित पाते थे। बाहर दुनिया में वे दो कौड़ी के, तुच्छ, नगण्य और दलित प्राणी थे। जेल में वे सर्व श्रेष्ठ (कम से कम सारे कैदियों में श्रेष्ठ), हाकिम और अधिकारी बन गये। अस्तु संसार की सारी दुर्दशाओं का बदला, जो उन्हें सहना पड़ी थीं या सहना पड़ती थीं, वे कैदियों पर निकालते थे। वे उन्हें बात बात पर डांटते, गाली बकते, धमकाते और अक्सर मारने से न चूकते थे। अधिकार पाकर उनको मद चढ़ता था। वे अहंकार से सोचते कि वे उस लोक के बादशाह हैं और निःसन्देह वे पूरी जेल पर अनियंत्रित शासक होते थे। किसी कैदी की क्या मज़ाल कि वह उनकी शिकायत बाहर पहुँचाता या किसी ऊँचे अधिकारी के सामने पेश करता। क्योंकि आखिर उसे रहना तो वहीं पड़ता था, फिर 'पानी में रह कर मगर से बैर' करने की मूर्खता कौन करता ? और यदि कभी कोई ऐसा मूर्ख आ भी जाता तो उसका कोई

परिणाम न होता, क्योंकि उच्च अधिकारी उनके लिये प्रमाण मांगते थे और उनकी जांच करने का ढंग इतना मूर्खतापूर्ण होता था कि सच बात कभी उनके सामने न आ पाती।

पिटने के बाद दोनों कैदियों को इतना क्षोभ, क्रोध और दुःख हुआ कि उन्होंने उस दिन रोटी नहीं खाई। उन बेचारों को क्या मालूम कि वह भी जेल-कानून के खिलाफ है। उनकी फिर पेशी हुई और फिर गालियां मिलीं तथा उनसे पूछा गया, "अभी पेट नहीं भरा क्या? अभी और पिटना है क्या?" निःसन्देह उन्हें और पिटने की इच्छा न थी। विवश वे रोटियां खाने के लिये बैठे। कौर उनके गले के नीचे नहीं उतरते थे; क्रोध और अपमान के जलते हुए आंसू उनकी आंखों में उमड़ रहे थे मगर वे रो नहीं सकते थे क्योंकि कहीं एकान्त न था। हंसते हुए, अश्लील गालियां बकते हुए और उनकी दुर्दशा पर आनन्द मनाते हुए कैदी उनके सामने, चारों ओर मंडरा रहे थे। अस्तु ऐसे नरधमों के सामने रोना भी वे अपमान समझते थे।

वे जब खाना खा रहे थे तो दो-दो या चार-चार कैदी उनके पास आते और उनसे झगड़े और सजा के बारे में प्रश्न करते। उस समय यद्यपि वे सहानुभूतिसूचक मुंह बनाने का भरसक प्रयत्न करते थे मगर आनन्द उनकी आंखों के किनारों से झांकता रहता था। सचमुच बात यह थी कि वे पास से जाकर, मार के चिन्हों को देखकर, पीड़ितों की दुःख-भरी बातें सुनकर, उनके आंसू और तड़पना देखकर, अधिकाधिक आनन्द उठाना चाहते थे। थोड़ी देर में भीखू भी दो कैदियों के साथ उनके पास जा पहुँचा। फिर यों बातचीत शुरू हुई :—

भीखू—"बहुत तो नहीं लगा भइया?"

उत्तर में सिर्फ सिर हिला दिया गया।

भीखू—"क्या करें भाई, जेलखाना है। बस नहीं चलता वरना सालों की आंखें फोड़ डालता।"

उत्तर में सन्नाटा रहा। दोनों कैदी निरुद्देश्य और खाली आंखों

से सनने की ओर देखते रहे।

एक कैदी—"खैर रहो, कोई परवाह मत करो। देखा जायगा। सालों को हम भी देख लेंगे।"

रामदयाल ने सिर्फ उसकी ओर अपनी बड़ी बड़ी आंखें उठाकर देखा, मानों वह उनकी जांच करना चाहता था।

दूसरा कैदी—"अजी, बहादुर लोग इसकी परवाह नहीं करते। इसी भीखू को देखो न। इसकी आंख कोई बाहर से ऐसी नहीं थी। यह जेल ही में फूटी है और इसी साले जमादार की मार से फूटी है ...... (भयङ्कर गाली)।"

दोनों आश्चर्य से प्रश्नसूचक मुद्रा करके भीखू की ओर देखने लगे। भीखू खिलखिलाकर हँस रहा था मानो कोई बड़े आनन्द की बात हो।

दूसरा कैदी—"हां हां, मैं सच कहता हूँ इस भीखू ने बड़ी आफ़त मचाई है भइय्या। जेलर को इसने मारा, सुपरिन्टेन्डेन्ट पर इसने वार किया, एक कैदी की नाक इसने काटी, जमादार पर टट्टी का कुंडा इसने फेंका। इसे क्या तुम कम समझते हो?"

दोनों का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया और इस अवस्था में भी उन्हें हंसी आगई।

दूसरा कैदी—"और हां यह साला है बड़ा मजबूत। पिटा यह, बेडियां इसने पहिनी, अड़बङ्गा इसके पड़ा, खड़ी हथकड़ी में यह लटका, चार मर्तबा बेतें इसने खाईं। कुछ हद है भइय्या!"

भीखू आनन्द से हँस रहा था, गौरव और अभिमान से उसका भद्दा चेहरा जगमगा रहा था। उसके बड़े मुंह से मैले दांत इस प्रकार झांक रहे थे जैसे किसी गड्ढे में लकड़ियां पड़ी हों।

दूसरा कैदी—"लेकिन यह साला जेल आना नहीं छोड़ता। यह आठवीं बार है। क्यों न भीखू?" उसने भीखू की ओर मुंह करके पूछा। भीखू ने सिर्फ स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

दूसरा कैदी—"अब तो यह बड़ा सीधा हो गया है। अब इससे

अक्सर कोई बोलता भी नहीं है। पहले तो यह बिल्कुल [illegible] गालियां नहीं सह सकता था मगर अब तो पूरा बज्र हो गया है। चाहे जो कोई मारे जाय, गालियां दिये जाय, पट्ठे को फिकर ही नहीं रहती।"

भीखू हँस ही रहा था। उसकी गर्दन अपना बखान सुनकर कुछ तन गई थी।

दूसरा कैदी—"और क्यों रे ......"

इसी बीच में रामदयाल का मुंह खुला। उसने मुस्कराते हुए पूछा, "क्यों जी, तीन-चार दिन पहले तो तुमको वह जमादार पीट रहा था न ? क्या बात थी उस दिन ?"

भीखू के उत्तर देने के पहले ही दूसरा कैदी बोल उठा, "अरे उस दिन ? ह ह ह ह ! ! ! उस दिन यह साला एक लौंडे पर जबरदस्ती चढ़ बैठा था।"

तीनों कैदी ठठाकर हंस पड़े। सिर्फ रामदयाल और इन्द्रनारायण आश्चर्य से मुँह ताकते हुए रह गये। उनके मन का दुःख इन बातों से कुछ कम हो गया था। आखिरी बात का अर्थ वे कुछ कुछ अवश्य समझ गये थे मगर संकोचवश कुछ आगे न पूछ सके। रामदयाल ने कुछ सोचते हुए कहा, "बाप रे बाप ! आठ दफे जेल में आया है यह। क्यों भाई बार बार क्यों आते हो ?"

"क्या करूं बाहर तबियत ही नहीं लगती," भीखू ने बड़ी लापरवाही से उत्तर देकर अपने दांत दिखा दिये। दोनों कैदियों के लिये यह और भी विचित्र गूढ़ प्रश्न था। वे कुछ भी न समझ सके और आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए रह गये। उन्हें क्या मालूम था कि यह जेल-अनुशासन, जेल-वायुमण्डल का प्रभाव था जिसने भीखू की अभागी आत्मा को कुचल कर फिर मजबूत जंजीरों से बांध रक्खा था जिससे वह मन्त्र-मुग्ध की नाईं खिंचा हुआ चला आता था। पिट पिट कर और कुचल कुचलकर सारी मनुष्यता उसके अन्दर से निकल गई थी। वह जब दुनिया में जाता था तो देखता कि दुनिया उसके रहने के

लिये सर्वथा अयोग्य स्थान है। उसे वहां भय लगता, वह शर्माता कि वह कहां आगया है। और तुरन्त ही जेल की जंजीरें उसे फिर अन्दर खींच लेती थीं।

(४)

फिर चक्की चलने लगी—इस बार रो रो कर, ख़ूने-जिगर पी पी कर। दोनों को मालूम पड़ता था मानों चक्की पहले की अपेक्षा भारी हो गई है—इतनी भारी मानों सारा ब्रह्माण्ड शेषनाग के फन पर सधा हुआ न होकर उसी चक्की पर ठहरा हुआ है। उनके हाथों में दर्द होता, शरीर का प्रत्येक अंग टूटता मानों किसी ने हथौड़े से उन्हें पीटा हो। उनके पेट में आग जलती क्योंकि भोजन भरपेट न मिलता था, प्राण तड़पते, हृदय हाहाकार करता; तब वे चारों ओर को विवश और आर्त दृष्टि से देखते मगर कहीं शरण या छुटकारा न दिखाई पड़ता। चक्कियों का घरघर अट्टहास उनका उपहास करता हुआ उनके चारों ओर फैलता, ईर्षालु और हँसती हुई आंखें उन्हें चारों ओर से ताकतीं और नम्बरदार की कठोर, विजयी और गर्वित ललकार गूँज उठती, 'इधर उधर क्या देख रहे हो? अपना काम करो!'

उस घटना के बाद उन्होंने जान तोड़कर काम करना शुरू किया। 'चाहे शरीर के टुकड़े टुकड़े हो जायँ, खून पसीना बनकर वह जाय, चाहे यहीं चक्की में सिर फोड़कर प्राण दे दें मगर अब अपमान होने का मौका नहीं आने देंगे'। ऐसा उन्होंने संकल्प कर लिया था। मगर......

नम्बरदार रोज़ कोई न कोई नुक्स निकालने लगा। कभी वह कहता, "यह आटा गीला कैसे हो गया है रे? क्या इसमें पानी डाल दिया?" कभी कहता "यह मोटा क्यों पीसा है? इसकी चोकर निकाल कर उसे फिर पीसो" और उन्हें फिर से चोकर पीसना पड़ती थी।

चार दिन इसी प्रकार और बीत गये। अभी नौ दिन और पीसने के लिये बाकी थे। उस दुबले कैदी के शरीर में उस दिन की मार से शक्ति नहीं आई बल्कि वह पहले से भी अधिक दुर्बल हो गया। नम्बरदार

उसे रोज गालियां देता, मारता, मगर उससे वह किंचित भी बलवान और कर्मण्य न बना। चक्कियों की नीरस घरघराहट के मध्य में उसकी दीन डिडकार—वध-स्थान की ओर ले जाती हुई या बछड़े से बिछुड़ती हुई गाय के समान गूँज उठती। उसकी करुण ध्वनि चक्कियों के शब्द को क्षण भर के लिये दबा लेती मगर फिर चक्कियां ऊपर आजातीं और वह घुटकर डूब जाती। अन्त में उसने अपना सिर चक्कियों के कीले में दे मारा। उसका सिर फट गया। खून से चक्की भीग गई। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। तब कहीं चक्कियां थोड़ी देर के लिये बन्द हुईं। कैदियों को थोड़ा सा मनोरंजन मिल गया। उन्होंने उसके चारों ओर जमा होकर थोड़ी देर तक आनन्द से उस विषय पर चर्चा की:—

"मर गया क्या?"

"मरा नहीं, बेहोश हो गया है।"

"हूं। साले जेलखाने में आते हैं फिर रोते हैं।"

"इनसे तो औरतें अच्छीं!"

"देखो तो सारा आटा खून से भीग गया! राम राम! चू चू!"

वह जब उठाकर अस्पताल ले जाया गया तो फिर चक्कियां अपने उसी पुराने स्वर से चल उठीं। वही भद्दा, गुर्राता हुआ, अभिमानपूर्ण, भयंकर और नीरस राग फिर से छिड़ गया—घररररर! घररररर! घररररर! बीच बीच में उस स्वर को फाड़ती हुई कैदियों की प्रश्नोत्तरी गूँजने लगी:—

"क्यों रे! कहीं साला मर न जाय? खून बहुत गिर गया है।"

"मर साला जाय। हमें क्या?"

इस प्रकार एक एक दिन एक एक युग के समान बड़ी कठिनता से कटने लगा। इतने ही में मुसीबतों का अन्त न था। जेल की परेड, जेल के नियम, जेल के ताले और जंगले और और भी बहुत सी भयंकर चीजों ने मिलकर उन्हें बिल्कुल विवश पशु बना दिया था। कहीं जाओ तो दो दो की लाइन में जाओ, इधर तलाशी कराओ, उधर तलाशी कराओ, नंगे हो जाओ, यों बैठो, यों उठो, यहां बैठो, वहां मत बैठो,

उधर मत जाओ, यों चलो, यों बोलो, इस समय मत बोलो, इतना बोलो, इतने मत बोलो, यों हाथ करो, यों पैर करो, इतनी देर में टट्टी फिरो, इतनी देर में खाना खाओ, इतनी देर सोओ, यहां सोओ, यों सोओ,—(यहां तक कि एक प्रकार से) यों सांस लो, यों जिओ और यों मरो के लिये भी जेल में सख्त नियम थे जो डिसिप्लिन के नाम से पुकारे जाते थे। इस प्रकार के असंख्य नियमों ने उनको इस तरह जकड़ रक्खा था कि उनका दम घुटने लगा, प्राण छटपटाने लगे। कौन जाने कब कौन सा नियम भंग हो जाय और गालियां, अपमान और मार सहनी पड़े। इस प्रकार इन असंख्य बन्धनों के साथ साथ, जिन्होंने जीवन को बिल्कुल मशीन बना दिया था, एक भयंकर आतंक, काली छाया के समान, हमेशा सिर पर मंडराता रहता—'हाय न जाने क्या होगा?' 'अरे क्या न हो जायगा', 'बाईं आंख फड़कती है, हे भगवान!' 'क्या मुझे बुला रहे हैं? मुझे? हरे राम! क्या मामला है?', 'हैं; अरे! साहब आया, अमुक आया, यह आया, वह आया, सम्हलो, सम्हालो, सावधान!'

इस प्रकार का घोर, पतनकारी आतङ्क वहां के वायुमण्डल में गूंजता रहता। हमेशा ही हृदय एक अज्ञात भय से धड़कते रहते। शरीर की सारी शक्ति केवल एक ही विचार पर केन्द्रित रहती, 'किसी तरह जान बचे। कौन जाने क्या होने वाला है।' उनकी अवस्था ठीक योरोपीय महायुद्ध में फ्रांस की खाइयों में रहने वाले सिपाहियों की सी थी। चारों ओर भयंकर गोलाबारी, पृथ्वी-कम्पन, चीत्कार, और मृत्यु। उनके सिर के पास से गोली सनसनाती हुई निकल जाती, उन्हीं के पास ही गोला गिर कर कुछ आदमियों को छिन्न-भिन्न कर देता, वे हमेशा इस आशङ्का में रहते कि 'अब मैं मरा, अब मरा, अब मेरे गोली लगी!'

तो यह वह वायुमण्डल था जिसने बहुसंख्यक कैदियों के अन्दर से मनुष्यता की अन्तिम बूंद भी निचोड़ ली थी। इसमें पड़कर हमारे दोनों किसान विचित्र स्थिति में पड़ गए। उनके अन्दर क्रोध धधकता मगर उसके लिये स्वतन्त्रता और आधार चाहिये था। आग के लिये

आधार कुछ लकड़ियां और स्वतन्त्र वायु चाहिये थी वह एक तङ्ग डब्बे में बन्द रहकर झुक जाती थी। हां वह डब्बा—उनका हृदय अवश्य ख़ाक होता जा रहा था वह दुर्बल हो रहा था।

नम्बरदार उन्हें रोज तङ्ग करने लगा। वह तो उनको दण्डित कराने के लिये कोई बहाना ढूंढ रहा था। उधर जमादार उन्हें हर रोज अनुशासन के गोरखधन्धे में अटकाने लगा। कोई न कोई गलती हो ही जाती थी; कभी टट्टी में देर लग जाती, तो कभी रोटी खाने में जल्दी या देर होजाती, तो कभी खड़े होने या बैठने में कुछ फर्क पड़ जाता था। बस उसी पर गालियां, धमकी और अपमान की बौछार उनके ऊपर होती। वे जितना भी बचकर चलते, उतना ही फंसते जाते थे। कुसूर उन्हीं का होता था फिर भला वे उसका विरोध कैसे करते?

सातवें दिन चक्की पीसते पीसते रामदयाल ने कहा, "दादा रे! मुझ से तो अब नहीं पीसा जाता।" उसका चेहरा पीला पड़ गया था और उस पर कठोर पीड़ा की छाप थी।

"क्यों?" बड़े भाई ने अपने हृदय का सारा प्रेम इस शब्द में भरकर कहा और उसके चेहरे की ओर देखने लगा।

"मेरी छाती में बड़ा दर्द है", रामदयाल ने छाती पर हाथ रखते हुए कहा। हरनारायन की छाती भी दर्द कर रही थी मगर वह बतलाना नहीं चाहता था। उसने डाक्टर से इसकी शिकायत की थी मगर डाक्टर के पास इन 'बदमाशों' की 'अकड़बाजी' की खबर बहुत विस्तार के साथ पहुँच चुकी थी, फिर उसके स्टेथस्कोप ने उसे कोई खास बात जाहिर नहीं की थी। अस्तु वह समझा कि 'मुझे चरा रहे हैं। चकमा दे रहे हैं।' परिणामस्वरूप सिर्फ टिंक्चर-आयोडिन का एक फोहा उसकी छाती में रगड़कर छोड़ दिया गया था।

हरनारायन की आंखों में आंसू डबडबा आये। उन्हें जल्दी से पोंछकर वह बोला, "भाई, ऐसे कैसे चलेगा? काम तो करना ही पड़ेगा। जेलखाना है कुछ घर थोड़ा ही है?"

भाई की आंखों के आंसुओं ने नवयुवक के हृदय की बुझती हुई आग भभका दी। वह बोला, "दादा रे! मुझे तो बस तुम कह दो। मैं साला को चार को तो ले ही बैठूँगा। बहुत करेंगे मुझे मार डालेंगे मगर एक बार फैसला तो होजायगा। यह नम्बरदार कहां चैन लेने देता है। तीस सेर पीसने पर भी कानून लगाता है। उसमें दस सेर चोकर निकाल देता है। ऐसे कहां तक पीसेंगे? एक बार निपट लेने दो। जो होगी सो देखी जायगी।" उसका पीला मुँह लाल होगया। उसकी काली आखों से ज्योति निकलने लगी।

हरनारायन ने उसे चुमकारकर शान्त किया। उसकी ऊपरी उत्तेजना शान्त होगयी मगर उसके अन्तःकरण में धीरे धीरे वह ज्वाला बढ़ने लगी। दोनो चुपचाप पीसने लगे। दोनों के हृदय दर्द कर रहे थे। पीड़ा, अपमान, विवशता और क्षोभ से उनके कलेजे में हूक उठती थी। हरनारायन का जी रोने को उमड़ता था—विवशता और पीड़ा से। रामदयाल का हृदय रोने को करता था—क्रोध और पीड़ा से। दोनों आंसू रोके हुए थे। उनकी गर्म गर्म सांसें परस्पर टकराकर टुकड़े २ होकर इधर उधर फैल रही थीं और उनके बीच में चक्की कर रही थी घ र र र! घ र र र!

शाम को काना भीखू अपनी आंख मिचमिचाता हुआ आया और बड़े धीरे से फुसफुसाकर बोला, "कुछ सुना है?"

"क्या"? दोनो ने आशंकित होकर पूछा। उनके दिल भावी संकट का आभास पाकर धड़कने लगे।

"जमादार ने जेलर से कहा है कि कोल्हू में आदमी कम हैं, सो चक्की में से जो नये आदमी चार-छः दिन में निकलने वाले हैं उन्हें दे दिया जाय। वे तगड़े भी हैं। दूसरे मजबूत आदमी नहीं मिलते।"

"फिर?" दोनों ने भय से थरथराते हुए कहा। उनके गले में गोला सा उठने लगा।

"फिर क्या? हुक्म होगया। चक्की की मियाद पूरी करके तुम्हें

कोल्हू में तेलेंगे ! उनकी समझ तो मद से कहीं है !" इतना कहकर काने ने बड़ा उदास सा मुँह बनाया।

दोनों को ऐसा मालूम पड़ा मानों उनके प्राण निकल गये। उनके हृदय की वेदना को कैसे चित्रित किया जाय ?

कुछ सोचकर शैतानी से आंख झपकाता हुआ वह काना बोला. "देखो जी, ऐसे काम नहीं चलने का। तुम लोग तो बिलकुल नामर्द ही निकले। वहां गाव में गरीबों को ठोंक-पीट लिया होगा धोखे में। शेर को मारने में बहादुरी है। वरना देख लेना, मेरी बात याद रखना, ये लोग तुमको यों ही तंग करके मार डालेंगे।"

इन वाक्यों से रामदयाल उछल पड़ा, मानों उसे वह वस्तु सहसा प्राप्त होगई जिसे वह बहुत देर से ढूंढ रहा था। वह आवेश के साथ बोला, "बस दादा, मैं ठीक किये देता हूँ साले जमादार को, नम्बरदार को।"

"शाबाश ! यह है मर्दों का काम", काना आनन्दित होकर बोला। उसे सिर्फ अपने प्रति किये गये अत्याचारों का बदला लेना था। वह एक चट्टान को दूसरी पर पटकना चाहता था। इसी में उसे आनन्द और सुख मिलता था। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि पहली चट्टान कुचली है या दूसरी।

"और तुम मेरी मदद करना, भीखू !" रामदयाल ने मित्र-भाव से हाथ पसारते हुए कहा।

भीखू ने बड़ा ही उदार चेहरा बनाने का प्रयत्न करते हुए उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बड़े तपाक से उत्तर दिया, "मेरी जान हाजिर है। तुम्हें चाहिये क्या ? चाकू ? छुरी ? कट्टन ? डंडा ? अपने पास सब मौजूद है। मेरे ख्याल से साले की नाक काट लो।"

रामदयाल ने कुछ सोचते हुए कहा, "एक छोटी सी—सिर्फ एक हाथ भर की लोहे की छड़ मिल जाय तो ठीक रहेगा।"

"हो !" भीखू ने तड़ से जवाब दिया, "कब ? अभी ? कहो तो अभी ले आऊँ ?"

रामदयाल भोंदू की जल्दी और तैयारी से कुछ घबरा सा गया। उसने कहा, "कल बताऊँगा।"

'अच्छा' कहकर भोंदू वहां से तेजी से रवाना हुआ और चुपके से जाकर जमादार के कान में बोला, "साहब, जरा सम्हल कर रहना। उनकी नजर कुछ टेढ़ी हो रही है।"

"हां?" जमादार ने आंखें फाड़कर कहा, "अच्छा! शाबाश भोंदू, मैं तैयार रहूंगा। तू भी ज़रा मेरे पास रहा कर।"

"बहुत अच्छा।"

उस दिन से जमादार बड़ा मोटा डंडा लेकर जेल में आने लगा और बड़ी सशंक दृष्टि से दोनों की ओर देखने लगा। वह उन पर पहले से अधिक सख्ती भी करने लगा।

हरनारायन को रामदयाल का आचरण अच्छा न लगा। उसने उसे धमकाया। जो हमेशा अपने छोटे भाई को युद्ध के लिये उत्साहित किया करता था उसी को एकदम शान्ति और अहिंसा की बातें करते देखकर रामदयाल को हार्दिक वेदना हुई। वह मन ही मन भाई से विद्रोह कर बैठा। इसीलिये ज्यों-ज्यों उसका भाई उसे शान्ति का उपदेश देता था त्यों-त्यों वह मन में और अधिक कुढ़ता था। वह सदा से ही संकोची और आज्ञाकारी था अस्तु प्रकट में वह भाई से कुछ न कह सका। इस प्रकार एक ओर रामदयाल उग्रता के भयङ्कर पथ पर चला जा रहा था तो दूसरी ओर उसका भाई पतन की खाई में गिर रहा था। वह डरपोक होता जा रहा था। उसके मन में विचार उठते कि 'गाली से क्या होता है? वह कुछ अपने बदन को लग थोड़े ही जाती है। फिज़ूल में झगड़ा करके अपनी मिट्टी क्यों पलीत करावें? मुसीबत का घर है। जैसे सब रहते हैं वैसे ही खुद रहें। वे सब क्या आदमी नहीं हैं? अफसर के आगे गर्दन नीची करने से वह खुश होता है तो इसमें अपना क्या नुक्सान है? सभी मौज कर रहे हैं। बहुतों से काम नहीं होता, मगर उनकी कभी पेशी नहीं होती। कारण कि वे अफसरों के हाथ-पैर जोड़ते हैं। हम भी

ऐसा करें तो क्या कुछ घिस जायँगे ? अरे भाई, वही बड़े सही। हम छोटे सही। जान तो बचे : बाहर निकलेंगे तो सालों को सब को देख लेंगे, इत्यादि इत्यादि।' अपने इन विचारों को वह रामदयाल से कहता। रामदयाल लज्जा से मुँह झुका लेता मगर उत्तर कुछ भी न देता : इस प्रकार दो भाइयों के हृदयों में अन्तर पड़ने लगा। हरनारायन अपने छोटे भाई की तेजस्विता से ईर्षा करने लगा। रामदयाल बड़े भाई की कायरता से घृणा करने लगा। वे परस्पर दूर हटने लगे दोनों ने भिन्न-भिन्न मार्ग पकड़े। क्रमशः वे एक दूसरे को भला बुरा कहने लगे, उनमें झगड़ा होने लगा। अपने मन पर चढ़ी हुई उस झनझनी को वे आपस ही में एक दूसरे पर उतारने लगे। अपने प्रति किये गये अत्याचारों का बदला वे आपस ही में लेने लगे। वे एक दूसरे को गाली देते :—

"साले तूने मुझे फंसाया है।"

"तूने फँसाया है मुझे। तू ही तो गया था अमीन से लड़ने।"

"तू ही है सब ऐब की जड़, तेरे ही लिये मेरी यह दशा हुई है।"

इस प्रकार बदले का कोई मार्ग न मिलने के कारण वे अपने तप्त हृदयों की राख और कीचड़ एक दूसरे पर उलीचने लगे। हां इसका एक परिणाम अच्छा हुआ कि उनकी शक्तियां और ध्यान इधर बंट जाने के कारण जमादार को मारने की स्कीम अपने आप ही स्थगित होगई यद्यपि भीखू रोज तकाजा कर जाता था, 'क्यों भाई, लाऊं क्या आज ?' वे चक्की के दिन पूरे करके कोल्हू में दे दिये गये: और जमादार की निगरानी में, जो अब उतना चौकन्ना नहीं रह गया था, वे कोल्हू चलाने लगे। यह भी उनका दुर्भाग्य था।

(५)

'चे चें, किच् किच्, सररर, सररर' कोल्हू चला करता था। उनकी चोटी का पसीना एड़ी तक आता, सिर में भड़ भड़ आवाज होती, आंखें निकली पड़तीं मगर तो भी वे कोल्हू के लट्ठे को छाती से ठेलते हुए घूमा करते थे। उन्हें क्रोध आता, वे झुँझलाते, मगर किसके ऊपर ?

"साले तू कुछ जोर नहीं लगाता।"

"तू ही नहीं लगाता, मैं मरा जाता हूं खींचते खींचते।"

इस प्रकार कभी कभी वे लड़ पड़ते तब देवीसिंह उनका फैसला करने को आगे बढ़ता। वह दोनों को गालियां देता, "हरामज़ादो, लड़ते हो? चलो सामने।"

सामने (पेशी) का नाम सुनकर हरनारायन फक् होजाता था। वह जमादार की चापलूसी करने लगता, उसे 'हुजूर', 'साहब', 'गरीबपरवर' इत्यादिक आदरसूचक नामों से पुकारने लगता। उस समय उसकी सूरत उस कमजोर तथा मरियल कुत्ते सरीखी होजाती थी जो किसी बड़े कुत्ते को देखकर, दुम दबाकर उसके चारों ओर चक्कर काटने लगता है, कभी उसे चाटता है तथा कभी उसके सामने ऊपर को टांगे करके लेट जाता है। जमादार उसी बलवान कुत्ते की भांति अकड़कर खड़ा होजाता और धीरे धीरे गुर्राता हुआ उसकी चापलूसी सुनता तथा जलते हुए नेत्रों से रामदयाल की ओर देखता जो अभी तक अपने चेहरे पर स्वाभिमान का रंग चढ़ाए हुए था।

जमादार कहता, "देख रे! तेरा भाई अभी तक अकड़ख़ां बना हुआ है। तू समझदार है। उसे समझा देना। यह जेलखाना है; यहां बड़ों बड़ों की अकड़ नहीं रहती। तीन साल हुए एक जमींदार साहब को सजा होगई थी........।"इसके बाद वह जेल की पुरानी बातें सुनाने लगता, जिनमें गर्व करने वालों के गर्व को चूर करने की सफल कहानियां होती थीं।

हरनारायन अपनी आंखों को चापलूसी से झपकाता हुआ धीमे स्वर में बोलता जिसमें उसका भाई न सुन सके, "मैं क्या करूं हुजूर, वह लड़का मेरे बस का नहीं है। जैसा करेगा वैसा भरेगा। मैं तो आप लोगों की गुलामी करके अपने दिन काट लेना चाहता हूँ।"

इस प्रकार हरनारायन अपने दिन काट रहा था। रामदयाल दूर से यह सब कुछ भांपता और मन ही मन कुढ़कर रह जाता था। उसे

जमादार की गाली सुनकर ताव आता था और वह ज्यों ही उसको जवाब देने के लिये इरादा करता त्यों ही उनका भाई जमादार के तलुवे चाटना शुरू कर देता था जिससे बेचारा रामदयाल अपने अन्दर ही अन्दर लज्जा और सन्ताप से मरकर रह जाता था। धीरे धीरे दोनों के 'चाल-चलन' की गुप्त रिपोर्ट अफसरों के पास पहुंची। हरनारायन सिर्फ कोल्हू साफ करने और घानी के काम में नियुक्त किया गया और रामदयाल पहले ही के भांति कोल्हू चलाता रहा।

उसको तङ्ग करने के लिये जमादार कोल्हू का पेंच और अधिक कस देता था जिससे वह अधिक भारी चलता था मगर रामदयाल ने भी अपने प्राणों की बजी लगादी थी। भाई की कायरता और चापलूसी से उसे बड़ा क्रोध आया था और उसको (भाई को) इस पतन के लिए पुरुष्कृत होते देखकर तो वह पागल सा होगया। उसने साफ साफ शब्दों में जमादार से कह दिया था, "देखो जी, गाली मुंह से न निकालना। तुमको काम चाहिये; मुझसे पूरा काम लेलो। अगर रत्ती भर भी काम कम करूं तो मेरा सामना करवा देना।" यही कारण था कि जमादार ने कोल्हू को कस दिया था। रामदयाल की छाती फटी जाती थी, दूसरा कैदी जो उसके साथ काम करता था जीभ निकाल देता और कुत्ते की तरह हांफता था। जब रामदयाल जोर लगाता हुआ आगे बढ़ता तो आंखें निकलने लगतीं, चेहरा लाल पड़ जाता मगर वह आह न भरता था। कोल्हू चलाते चलाते उसकी नज़र कोल्हू पर आराम से बैठे हुए अपने भाई पर पड़ती तो उसके हृदय में बिच्छू डंक मारने लगते। जमादार पैशाचिक आनन्द में मग्न होकर उस नवयुवक को लड़खड़ाते, तनते और हांफते हुए चक्कर करते देखता और सोचता, 'अब ठीक होजाओगे बेटा!'

भाई के इस आचरण और जमादार की इस नीचता के कारण रामदयाल के मन में फिर से शैतान चिल्लाने लगा। कोल्हू चलाते चलाते वह सोचता, 'इसी को साले को कोल्हू में डालकर पीस डाला जाय

तो कितना अच्छा रहे।"

कुछ दिन बाद एक दिन दोपहर को भीखू भागता हुआ रामदयाल के पास आया और बड़ी उत्तेजना के साथ मगर दबी जबान से बोला, "कुछ मालूम है ?"

"क्या ?"

"तुम्हारी बुढ़िया मुलाकात के लिये आई है।"

"हां !" रामदयाल ने आश्चर्य से उछलते हुए कहा। वह एकदम खड़ा हो गया। उसका पीला चेहरा आनन्द से प्रभातकालीन फूल की भांति खिल उठा।

"मगर" भीखू सिर खुजलाता हुआ, शायद उसे आगे का समाचार देने में कुछ दुःख हो रहा था, बोला, "जेलर साहब ने तुम्हारी मुलाकात देने से इन्कार कर दिया। हां हरनारायन को मुलाकात दे दी है। बेचारी डोकरी बुरी तरह रो रही थी।"

रामदयाल का शरीर कांपने लगा। मातृप्रेम, व्यथा, पीड़ा, विवशता और क्रोध इन सब मनोवेगों ने मिलकर उसके चेहरे पर धूप-छांह का रंग चढ़ा दिया था। उसके पतले होंठ कांप रहे थे और वह लम्बी लम्बी सांसें ले रहा था। भीखू उसका अद्भुत रूप देखकर सकपका गया। रामदयाल ने कर्कश स्वर में पूछा, "क्यों ? मेरी मुलाकात क्यों नहीं दी ?"

"उन्होंने कहा कि तुम्हारा चालचलन ठीक नहीं है। तुम अफसरों से गुस्ताखी करते हो।"

'आह !' रामदयाल की आंखों में पहली बार आंसू छलछला उठे। वह अपनी बेबसी पर तड़पकर रह गया। उसे अपनी मां की याद आने लगी, 'हाय वह इतनी दूर चलकर आई और मैं मिल भी न सका। वह रोती होगी। हाय राम वह क्या सोचेगी, कैसे होगी, क्या करती होगी, कैसे गुजर करती होगी, कैसी होगई होगी ?' हज़ारों प्रिय प्रश्न उसके मन में घूम गये जिनका उत्तर पाने से जबरदस्ती वञ्चित

किये जाने के कारण उसका हृदय पानी के बाहर फेंकी गई मछली की भांति छटपटाने लगा। सहसा उसके हृदय में भीषण ज्वालामुखी धधक उठा, 'अच्छा साले देखता हूँ तुम्हें!' बस केवल एक इसी मनोवेग की ऐसी भयङ्कर प्रबलता हुई कि अन्य सारे भाव उसमें डूब गये, 'बदला! बदला!! बदला!!!'

भीखू बड़े गौर से अपनी एक आंख उसके चेहरे पर जमाये हुए उसका उतार चढ़ाव देख रहा था। पहले तो उसे उस पर दया आई मगर बाद में उसे आनन्द आने लगा, जिस प्रकार शैतान बच्चे किसी मेंढक या चिड़िया के बच्चे को पत्थर मारकर फिर उसके तड़पने में आनन्दित होते हैं।

"तो वह मुलाकात ही के लिये गया है?" रामदयाल ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा। भीखू ने केवल सिर हिला दिया।

"ओ मां! ओ अम्मा री!" रामदयाल का हृदय मूक रुदन करने लगा।

उसी दिन शाम को देवीसिंह ने तलाशी परेड के समय रामदयाल को छेड़ ही तो दिया, "क्यों रे गवांर! साले कैसा खड़ा है सिड़ी सा? सीधा खड़ा हो।"

शायद बिजली की तड़प देखी जा सकती है लेकिन किसी ने न देख पाया कि किस प्रकार रामदयाल उछलकर जमादार के पास पहुँच गया और उसका डंडा छीन लिया। लोगों ने तब देखा जब उसने दो डंडे जमाकर देवीसिंह को उसकी गालियों और 'जमादारी' के साथ पृथ्वी पर गिरा दिया और फिर डंडों के प्रहार से उसके सारे पापों को झाड़ने लगा जिस प्रकार किसान कँटीली झाड़ी के कांटों को झाड़ता है। फिर क्या था, सीटी बज गई। कई वार्डर और नम्बरदार रामदयाल के ऊपर झपट पड़े और उसे इस प्रकार पीटने लगे जिस प्रकार कोई भैंस को पीटता है, यहां तक कि वह बेहोश और लोहू-लुहान होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने पर भी उन वीरों ने अपने प्रहार बन्द नहीं किये।

नतीजा पर रामदयाल की पेशी की गई और उसे बीस बेंतो और काल-कोठरी की सजा मिली। उस दिन कैदियों में आनन्द की लहर उठ रही थी। चारों ओर इसी विषय की चर्चा हो रही थी। सभी जमादार के पिटने पर हर्ष और आनन्द प्रकट कर रहे थे। सभी रामदयाल की प्रशंसा कर रहे थे, साथ ही साथ उन्हें इस बात से भी कम आनन्द नहीं था कि उसे बीस बेंत नंगे चूतड़ों पर खाना पड़ेंगे। वे इस विषय पर गर्मागर्म बहस कर रहे थे :—

"देखना, वह रो देगा बेंत लगने पर।"

"अबे जा साले! वह चूं तक न करेगा। मैं शर्त से कह सकता हूँ।"

"हां है तो बहादुर यार।"

"अजी सारी बहादुरी भूल जायगी। बेंत कोई मज़ाक नहीं है।"

इस पर बड़ी बहस चली। सभी अपने अपने पक्ष में पिछले उदाहरण पेश करके अपनी भविष्य-वाणी की सत्यता सिद्ध करने लगे। भीखू रामदयाल के पक्ष में था। उसका कहना था, 'उंह ऐसे बेंतों की क्या परवाह? चाहे सौ पड़ जाएँ बीस की जगह।' तात्पर्य यह कि किसी ने उस अभागे के प्रति सहानुभूति और दया का एक शब्द तक न निकाला। सभी बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे। केवल हरनारायन के हृदय में दलित भ्रातृ-प्रेम मूक रुदन कर रहा था, 'अरे उसे बेंत लगेंगे। हाय राम क्या करूं? क्या करूं?' रह रहकर उसे क्रोध भी आता। 'उस बेवकूफ को कितना समझाया मगर वह सुनता कब है। अब भुगते। मैं क्या करूं? परन्तु यह क्षणिक क्रोध कुहरे की भांति उड़ जाता और वह फिर उसके लिये मन ही मन में रोने लगता था। वह एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाल सकता था। अफसर बड़े गौर से उसकी निगरानी करवा रहे थे। वे उसके सामने रामदयाल की बुराई करते और हरनारायन को मजबूरन उनकी हां में हां मिलाना पड़ती। 'हां साहब, हां हजूर, लड़का बड़ा खराब है' इत्यादि।

आखिर वह दिन आया। रामदयाल टिकटी पर बांधा गया—

नंगा। उसका चेहरा दुबला और सफ़ेद हो रहा था, मानों वह किसी पुराने कुंये से निकाला गया हो; परन्तु उसकी बड़ी बड़ी आंखें, जो और भी अधिक बड़ी दिखाई पड़ती थीं, अद्भुत ज्योति से चमक रही थीं। उसके होंठ मजबूती से बन्द थे। जब बेतों की तड़ातड़ मार शुरू हुई तो उसने दांतों से अपने कन्धे का गोश्त पकड़ लिया और वह चुपचाप मूर्ति सरीखा खड़ा रहा। पूरे बेंत लग चुकने पर वह काल-कोठरी की ओर ले जाया गया। चलते चलते उसने दूर पर जंगले के उस पार से झांकते हुए कैदियों और खासकर अपने भाई की ओर नज़र डाली—कितनी ज्वाला थी उस दृष्टि में!

इस घटना का प्रभाव भी दोनों भाइयों के मन पर भिन्न भिन्न पड़ा। कैदियों का तो मानो उस दिन त्योहार ही हो गया; खूब तम्बाकू फुंकी गई, खूब चरस उड़ाई गई और इस घटना की बड़े विस्तार से बार बार चर्चा की गई। हरनारायन के हृदय में हज़ारों मन पत्थरों का बोझ पड़ गया। उसके नीचे उसकी सारी मनुष्यता पिसकर चूरन हो गई; वह भय और आतंक से लिफाफे में बन्द चिट्ठी की भांति ढक गया। वह बड़ा ही दीन, बड़ा ही चापलूस, झूठा, शक्की, और धोखेबाज़ हो गया। दूसरे ही दिन अफसरों ने उसे कैदी-अफ़सर (कच्चा नम्बरदार C.N.W.) बना दिया। उस दिन से वह स्वयं कसाइयों के गुट्ट में भर्ती हो गया। वह कैदियों से काम लेने लगा और अपने तथा अपने भाई के प्रति किये गये सारे अत्याचारों का बदला वह उन निरीह कैदियों से लेने लगा। जितनी गालियां और मार उन्हें खाना पड़ी थी वह सब चक्रवृद्धि ब्याज के साथ वह दूसरों से वसूल करने लगा। धीरे धीरे हरनारायन का नाम सब की ज़बान पर रहने लगा। सभी उससे डरने लगे। वह अफसरों का मुंह लगा हो गया। कैदियों की खुफिया झूठी-सच्ची रिपोर्टें करके तथा कैदियों को पीट-पीटकर वह अफ़सरों की निगाह में 'बहुत अच्छे चाल-चलन वाला' कैदी गिना जाने लगा। वह इतना निर्दयी हो गया कि देवीसिंह जमादार उसके सामने फीका पड़ गया। तीन महीने के बाद ह

वह नम्बरदार (C.O.) बना दिया गया। जेल के सारे दुष्कर्म उसने सीख लिये। तम्बाकू वह बाहर ही से पीता था। अब चरस, गाजा, भाग, इत्यादि का सेवन भी धड़ल्ले से करने लगा। लौंडे रखने का भी उसे शौक हो गया और........

रामदयाल ने कभी तम्बाकू तक नहीं पी थी। अब वह प्रत्येक मादक पदार्थ का सेवन करने लगा। भीखू ने उसकी इस विषय में बड़ी सहायता की। वह काल कोठरी में प्रत्येक चीज उसके पास पहुँचाया करता था। रामदयाल की मानसिक स्थिति बड़ी अजीब हो गई। वह बड़ा फक्कड़, मुँहफट, लापरवाह और अश्लील हो गया। बेंतों की चोटों ने उसकी सारी कोमल भावनायें नष्ट कर दीं. सिर्फ कठोर अमानुषिकता ज्यों की त्यों खड़ी रही। इतना ही नहीं कोमल भावनाओं की खाद पाकर वह किसी जंगली कांटेदार पेड़ की भांति लहलहा उठी। थोहर के कँटीले पेड़ की भांति या नागफनी की भांति वह पशुता उसके हृदय में डोला करती थी। वह भूत, भविष्य और वर्तमान भूल गया था। वह अपने आपको भूल गया था। वह भीषण अट्टहास किया करता था और दांत पीसकर बातें किया करता था। उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह हमेशा नशे की झोंक में रहा करता हो।

[६]

पाठक, क्या अब भी कुछ शेष रहा है? क्या अब भी कहानी समाप्त नहीं हुई?

अच्छा तो तीन महीने बाद रामदयाल काल-कोठरी से निकाला गया और काम पर भेजा गया। दिन भर रामदयाल वहां अश्लील बातें करता, कैदियों को हँसाता और खुल्लमखुल्ला अफसरों को गालियां दिया करता था। अफसर भी उससे घबराने लग गये और उसे टालने लगे। मगर.........

तीन महीने बाद फिर एक बुढ़िया जेल के फाटक से रोती हुई वापिस जाती हुई देखी गई। उसके लड़के से उसे फिर मुलाकात नहीं

मिली थी। रामदयाल ने जब सुना तो अट्टहास करके कहा, "ह ह ह ह! क्यों आती है बुढ़िया बार बार? मेरी मुलाकात से नहीं होगी जब...... अफसर अपनी लड़की मेरे साथ ब्याह देगा।"

हरनारायन मां से मिला था और उसने अपनी तारीफ और रामदयाल का 'पागलपन' उससे खूब बढ़ा-चढ़ाकर कहा था। उसकी इच्छा थी कि वह बुढ़िया का मन रामदयाल की तरफ से फेर दे और उसे अपने जैसा बना दे, मगर बुढ़िया जेल-डिसिप्लिन में थोड़े ही रहती थी। वह कुछ न समझ सकी और रोती हुई चली गई। हरनारायन अपने भाई से आंख चुराता था। उसकी हिम्मत रामदयाल के पास जाकर घर के समाचार सुनाने की न हुई।

दूसरे ही दिन रामदयाल ने कट्टन लेकर अफसर के ऊपर हमला किया और उसकी नाक काटने के प्रयत्न में गाल पर गहरा घाव कर दिया। फिर रामदयाल पर कितनी मार पड़ी इसकी चर्चा करना असम्भव है। हां एक बात कही जा सकती है कि मारने वाले वार्डरों और नम्बरदारों में एक नम्बरदार का नाम हरनारायन भी था।

रामदयाल को तीस बेंतों की सजा हुई और एक महीने बाद जब वह उस दिन की मारपीट की चोटों से तन्दुरुस्त हुआ तो टिकटी में बांध कर उसके चूतड़ों पर तीस बेंत लगवा दिये गये। बाद में उसके बेड़ियां और अड़बङ्गा डालकर भयङ्कर काल-कोठरी में डाल दिया गया, जहां वह हमेशा जंजीर से बँधा रहता था। वह वहां बैठा बैठा सभी को अश्लील से अश्लील गालियां दिया करता और अपने आप ही अट्टहास किया करता था। यदि कोई अफसर उसके सामने जाता तो वह टट्टी का कूंडा फेंक कर उसे मारता था।

लोग कहते थे कि वह पागल हो गया है। कौन जाने क्या बात थी पर हरनारायन की तरक्की हो गई थी। अब वह कैदी-वार्डर बना दिया गया था।

रंग में भंग

"अगिया लागी सुन्दर बन जरि गयो"

"अगिया लागी, हा अगिया लागी, रे अगिया लागी,

सुन्दर बन जरि गयो !"

गाना बड़े रंग पर आरहा था। आठ-दस कैदी छुट्टी के मौके पर एक स्थान में बैठे हुए थे। उनमें से एक जिसका नाम मनोहर था अपने मधुर स्वर से आलाप रहा था:—

"सुन्दर बन जरिगयो, रे सु-न्-द-र बन जरि गयो।

प्रीति तो ऐसी कीजिए, जैसे लोटा डोर।

अपना गला फंसाय के, पानी लावे बोर ॥

अगिया लागी ...."

बाकी कैदी उस स्वर के प्रत्येक उठाव और गिराव पर झूम रहे थे।

"वाह !"

"खूब !"

"आहा !"

गाना जारी था:—

"सजन सकारे जांयगे, नैन मरेंगे रोय।

बिधना ऐसी रैन कर, कि भोर कभी ना होय ॥

अगिया लागी, हा अगिया लागी।"

उस गायक का मधुर स्वर धीरे २ ऊपर को उठ रहा था। वह चारों ओर को फैलकर एक वेदनापूर्ण वायुमण्डल की सृष्टि कर रहा था।

कुछ बड़ा ही दबाऊ, बड़ा ही पीड़ाजनक उनके सिरों पर झूल रहा था जिससे विवश उन अभागों के मुंह से प्रशंसा के स्थान पर आह निकल पड़ी। एक तो खिलखिलाकर हंस पड़ा, दूसरे ने जोर से ठण्डी सांस ली. तीसरे ने अपना कलेजा दबाकर जोर से कहा, 'आह'। चौथा सिर्फ अन्दर ही अन्दर तिलमिलाकर रह गया, पांचवां और छठवां इधर उधर देखने लगे मानों वे ढूंढ रहे थे कि क्या सचमुच आग लग गई और सुन्दर वन जल गया। सातवां अपने हृदय के भाव और पीड़ा को समझ न सकने के कारण जोर जोर से खांसने लगा जिससे सब का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होगया। गाने वाला अपनी आंखों को आधा बन्द किये हुए मस्ताने ढंग से गाता जारहा था:—

"लकड़ी जल कोयला भई, कोयला जल भयो राख।
मैं पापिन ऐसी जली, कि कोयला भई न राख॥

गायक के चेहरे से, उसकी बन्द आंखों से, ऐसा प्रकट होता था मानों वह जो कुछ गारहा था वह उसको स्पष्ट दिख रहा था। दूर पर, न जाने किस देश में, सुन्दर झोंपड़ियां बनी हुई हैं। उनमें एक प्रेमी और प्रेमिका रहते हैं। सहसा आग लगी और झोंपड़े जलकर राख होगये। प्रेमी कहीं जाने को निकला और प्रेमिका उसके लिये तड़प रही है, इत्यादि।

इस पीड़ामय प्रेम-गीत का स्वर प्रातःकाल की सूर्य-किरणों की भांति धीरे धीरे फैल रहा था और प्रत्येक श्रोता के हृदय को मधुर गर्मी पहुंचा रहा था। पेड़ पर बैठी हुई चिड़ियों में दो-एक कभी कभी कुछ बोल उठती थीं। दूर पर कुछ अस्पष्ट सा शोर हो रहा था। हवा में सन्नाटा और एकान्त सा भरा हुआ था। गाने ने सभी के हृदयों को छेड़ दिया। उनके मन में सिनेमा चलने लगा।

एक ने देखना शुरू किया—बहुत वर्षों पहले जब वह जवान था उसकी नज़र एक पड़ोसिन लड़की से लड़ गई थी। कितनी कठिनता से वह उससे मिला, फिर कैसे वे दोनों गुपचुप बातें करते थे, कैसे वह

'नहा नहीं करते' थी और किसी की आहट पाकर किस प्रकार दोनों भग जाते थे किस प्रकार दिन प्रतीक्षा में बीतता था। सन्ध्या के धुंधले प्रकाश में वह एक गाना गाता हुआ उसके दरवाजे से निकलता था। उसे वह सुनती और समझ जाती कि अब मिलने का समय आगया है। वह भी उसी के पीछे पीछे छिपकर चल देती। फिर दोनों मिलते......। इसके आगे की घटना वह नहीं सोच सका। आगे का दृश्य बड़ा ही दुखद था। उसका मन बार बार उपरोक्त दृश्यों पर ही घूमने लगा।

दूसरे के मन में उसकी नव विवाहिता पत्नी आकर खड़ी हो गई। उसे मालूम पड़ा मानो वह गुनगुना रही है, 'अगिया लागी सुन्दर बन जरि गयो।' वह देखने लगा उन चांदनी रातों को जब वह अपनी नव वधू के साथ एकान्त अटारी पर सोता था। रात बीतते देर नहीं लगती थी। वे दोनों सारी रात बच्चों की तरह हँस हँसकर और खेल खेलकर बिना सोये हुए बिता देते थे। थोड़े ही दिन यह सुख रह सका कि सहसा वह मारपीट में पकड़ा गया। उसे ऐसा लगने लगा मानो उसकी स्त्री एकान्त में पड़ी हुई रो रही है, उसके कपड़े मैले और फटे हुए हैं और वह अपने पति की याद कर रही है। .... वह इससे आगे कुछ न सोच सका। उसके हृदय में पीड़ा होने लगी।

तीसरे को अपने स्त्री-बच्चों की याद आगई। प्रेम जिस अर्थ में आजकल लिया जाता है उसका अनुभव उसे नहीं था। अस्तु वह किसी प्रेमिका की कल्पना न कर सका। वह अपने बच्चों और स्त्री की दुर्दशा का चित्र खींचने लगा और उसकी कल्पना ने उसे ऐसा दयनीय बनाकर उसके सामने रखा कि वह सिहर उठा और उसने विचार करना छोड़कर गाने वाले के मुंह की ओर देखना शुरू कर दिया।

चौथा और पांचवां कैदी दोनों गुम-सुम बैठे थे। गाना उनके दिल में प्रवेश कर रहा था और एक अज्ञात सनसनी पैदा कर रहा था जिसे वे समझ नहीं सकते थे और अपनी आंखें मिचमिचाकर शून्य

दृष्टि से न जाने किन अज्ञात और अदृष्ट पदार्थ को देखने का प्रयत्न कर रहे थे।

छटवें को ऐसा लग रहा था मानों वह एक नदी में बहा चला जा रहा है। वह जोर जोर से चिल्ला रहा था मगर कोई उसे बचाने नहीं आता था। वह थक गया था और डूबने ही वाला था कि सहसा उसका पाव किसी ने पकड़कर नीचे खींच लिया। इसके बाद वह मगर द्वारा खाया गया। उसके पेट में जाने पर उसे कैसा लगा और फिर किस प्रकार वह मगर का पेट फाड़कर बाहर आया इत्यादि न जाने कितनी भयङ्कर और पीड़ाजनक बातें उसके मन में जल्दी जल्दी घूम रही थीं।

सातवा किसी आग लगने की बात सोच रहा था जिसे वह बुझाने गया था। वहा उसने एक सुन्दर स्त्री देखी थी जिसका बच्चा देखते देखते मकान के अन्दर जलकर खाक होगया था स्त्री का रोना और चिल्लाना उसके कानों में गूंजने लगा। उसकी व्याकुल, आंसुओं से भीगी हुई मूर्ति उसकी आंखों के सामने नाचने लगी।

इसी प्रकार सभी कुछ न कुछ सोच रहे थे। सभी के विचार पीड़ामय थे। सभी अपने दुःख के वेग को दबाए हुए थे। वे वे लोग थे जिन्होंने संसार में दुःख, अपमान, दुर्दशा और पतन ही देखा था, जिनकी सारी इच्छायें और अभिलाषायें कुचल डाली गई थीं; जिन्हें जीवन में कुछ भी मधुर न दिखाई देता था। ऐसा जान पडता था मानों संगीत के द्वारा उनके हृदयों के घावों से धीरे धीरे खून बहने लगा था परन्तु वे तो भी संगीत की प्रत्येक लहरी को अपने हृदय में भर लेना चाहते थे क्योंकि वह उन्हें गरम मालूम पड़ती थी। उससे उनकी पीडा कुछ कम होती हुई मालूम पड़ती थी। वे जो अपनी आह को दबाकर रक्खे हुए थे वह संगीत के द्वारा निकलकर बाहर फैल जाती थी। उनके हृदयों पर पीड़ा और दुःख का जो भार लदा हुआ था वह मानों संगीत की धारा से बह जाता था और उनका मन कुछ हलका और ताजा हो जाता था। अस्तु वे एकाग्र चित्त से उस गीत को सुन रहे थे जिसमें सभ्य समाज के लिये

न तो कुछ रस था और न आनन्द। गीत लम्बा होता जा रहा था। गायक बार बार घूमता, आगे बढ़ता और फिर घूमकर एक स्थान पर आजाता, जिस प्रकार पानी में चक्कर उठता है :—

"अगिया लागी सुन्दर बन जरि गयो।
कागा सब तन खाइयो कि चुन चुन खइयो मांस।
दो नैना मत खाइयो कि पिया मिलन की आस॥"

"आह रे!"

"वाह वा! वाह वा!"

"वाह दोस्त!"

"वाह उस्ताद! खूब कही!"

सभी झूमने लगे। सब की आंखों में एक प्रेमिका की लाश झूमने लगी कि जिसकी आंखे मात्र सजीव हैं। इसी समय एक वार्डर और जमादार डंडे लिये हुए आ पहुँचे। गाना तो एकदम सन्न हो गया जैसे पानी में डूब गया हो। सब के मन में अन्धकार और सन्नाटा छागया। कल्पना के सुन्दर बन में सचमुच आग लग गई थी। आग जोर से कड़कड़ाई। जमादार ने डांटकर पूछा, "यह क्या हो रहा था? तुम्हारी........।" इसमें कुछ भद्दी गालिया भी शामिल थीं।

"क्यों हरामजादो! साले कौन गा रहा था? कौन?" उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए जमादार ने फिर पूछा। दोनों अफ़सर ऐसी जल्दी मचा रहे थे जैसी एक भूखा कुत्ता रोटी खाने के लिये मचाता है। ऐसा मालूम पड़ रहा था मानों वे गानेवाले को जल्दी ढूंढ निकालने के लिये उतावले हो रहे हैं।

किसी को उत्तर न देते हुए देखकर उसने चिल्लाकर पूछा, "क्यों रे बोलते क्यों नहीं हो? अभी कौन गारहा था? क्यों रे तू था? तू था? तू था?" जमादार ने प्रत्येक के पेट में डंडा अड़ा २ कर पूछना शुरु किया। कैदियों के चेहरे तमतमा उठे, उन्होंने अपनी आंखें नीची कर लीं और गला साफ करके जवाब देने लगे:—

"नहीं साहब, मैं न था।"

"ऊं हूं"

"नहीं हुजूर"

सिर्फ सिर हिला दिया।

मनोहर ने कहा, "हां साहब, मैं था।"

"तू था?" इतनी जोर से पूछा मानों कोई बड़े अचम्भे की बात हो।

"हूँ। तू था? यह कोई सराय है कि जेलखाना?"

"हुजूर, कसूर होगया, माफी........।"

"माफी की मां........ले चलो बदमाश को सामने!"

वार्डर ने दो डंडे व्याज में लगा दिये। फिर वह धक्का देता हुआ उसे ले चला, 'चल बे! चल साले!' मानों वह चलता ही न हो।

चलते २ जमादार उन श्रोताओं को भी पांच बढ़िया २ गालियां सुनाता गया। जिन कानो में अभी अभी संगीत की मधुर धारा भर रही थी उन्हीं में गालियो की कड़क ऐसी मालूम पड़ी मानों किसी ने हथौड़ा सिर पर दे मारा हो। सभी झल्ला उठे। जमादार के चले जाने पर वे उस दिशा की ओर भयङ्कर आंखें करके ताकते हुए गालियां बकने लगे। ऐसी भद्दी और कटु गालियां कि जिनको सुनकर किसी के भी कान भिन्ना उठें।

"........इनका गाने में क्या विगड़ता है?"

"न जाने........की क्यो........है!"

"जरा सा गाना गा लिया तो क्या कोई खून होगया, या जेल टूट गई?"

"आखिर ये लोग गाने से क्यों बिचकते हैं?"

"क़ानून नहीं है गाने का।"

"क़ानून की........ऐसा कैसा क़ानून?"

उस कैदी की बात कट जाने से वह झुँझला उठा और वह दूसरे से लड़ पड़ा। फिर सब मिलकर आपस में एक दूसरे को अज्ञात रूप से

गालियां देने लगे।

"साले भीड़ लगा देते हैं।"

"यह नहीं कि जरा दूर बैठें। एकदम जमा होजाते हैं इनकी···"

"हां साले जरा दूर रहें तो किसी को शक न हो। अफ़सरों ने जरा भीड़ देखी कि उन्हें शक हुआ।"

"और वह मनोहर भी तो उल्लू है। जरा धीरे धीरे गाता?"

"मैंने कहा था यार उससे कि धीरे २ गा। मगर वह तो है बेवकूफ़।"

इस प्रकार वे लोग अपने सुन्दर बन में आग लग जाने के क्रोध को एक दूसरे पर प्रकट करने लगे। वे सच्चे अपराधी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते थे और अपने मन की झुँझलाहट को भी सम्हालने में असमर्थ थे। अस्तु वे छोटा छोटा बहाना निकालकर एक दूसरे ही पर उस आग लगाने का बदला लेने लगे। धीरे २ वहां एक छोटा सा झगड़ा होगया।

(२)

दिन को जब जेल की ऊंची दीवार के उस पार दूर पर—बहुत दूर दुनिया में—कोई बाजा बजता और उसकी मधुर स्वर-लहरी धीरे २ किसी प्राचीन सुख-स्मृति की भांति उनके पास पहुँचती तो वे चुपचाप उसे सुनने लगतेः—

"अरे यार, जरा हल्ला मत मचाओ!"

"उं हुँ च् च् जरा चुप रहो!"

"तुम्हारा नाश हो साले सुनने नहीं देते।"

वह स्वर अन्तरिक्ष में दूर पर अपने आप क्षणिक बिजली की भांति चमककर डूब जाता तो वे ठंडी सांस लेकर रह जाते और एक दूसरे पर नाराज होने लगते कि उन्होंने हल्ला मचाकर सब बिगाड़ दिया, बाजा नहीं सुनने दिया। उस संगीत से वंचित होने का दोषी वे एक दूसरे को ठहराते और उसके द्वारा उनके मन में जो उथल-पुथल मच उठती

उसे न समझ सकने के कारण तथा न सह सकने के कारण वे क्रुद्ध हो उठते और आपस में लड़ पड़ते।

रात को जब वे जेल के कमरों की मोटी दीवारों और मोटे सींकचों के अन्दर बन्द होजाते तब वे चुपचाप सींकचों के बाहर आंखें लगाकर स्वच्छ आसमान और उसमें चमकते हुए तारों को देखा करते। जब चांदनी छिटकती और बाहर मैदान में चारों ओर सफेद प्रकाश फैल जाता, तब वे चंचल हो उठते और एक कहता :—

"यार कितनी अच्छी चांदनी है!"

दूसरा जवाब देता, "उहूँ, बहुत बुरी है!" सब उनकी बात पर हंस पड़ते, क्योंकि सभी इस युक्ति का गूढ़ भाव समझ जाते कि अंगूर खट्टे हैं।

तब तीसरा कहता, "ऐसी चांदनी में खुली हुई मोटर में बैठकर सैर की जाय।"

"नहीं नहीं, साइकिल पर चला जाय।"

"उ हूँ, साइकिल पर नहीं, पैदल जाया जाय।"

"और नदी के किनारे घूमा जाय।"

"नहीं यार बगीचे में चला जाय, खुशबू उड़ रही हो और...।"

"हुश्ट! पहाड़ पर घूमा जाय, एक साफ चट्टान हो......।"

बस इसी बात पर उनमें बहस उठ खड़ी होती और गाली-गलौज शुरू हो जाती। कोई मैजिस्ट्रेट को गाली देने लगता जिसने उसे सजा दी थी। कोई पुलिस की सात पीढ़ियों को तारने लगता तथा कोई किसी गवाह या अपने भाग्य ही को कोसने लगता। फिर कोई उसी बात को आगे चलाता :—

"ऐसे वक्त में चौक बाजार की सैर की जाय।"

"नहीं यार सिनेमा देखा जाय।"

"हां तुमने आलम-आरा देखा था?"

"वाह जुबेदा का क्या कहना! ऐसा गाती थी!"

फिर दूसरा किसी अन्य सिनेमा की तारीफ करने लगता जिसे उसने देखा था। फिर इसी पर बहस छिड़ जाती कि कौनसा सिनेमा अच्छा था। जिन्होंने सिनेमा देखे थे वे अपने अपने देखे हुए सिनेमा की तारीफ करने की जल्दी मचाते। कोई किसी की न सुनता। सभी बोलने लगते। सिर्फ जिन्होंने कोई खास सिनेमा नहीं देखा था या बात-चीत करने में बहुत चतुर न होते थे वे चुपचाप सब की बातें सुनते। उनका चेहरा एक दीन और तृप्ति भाव से चमक उठता और वे आंखें मिचकाते हुए उनकी बातें सुनते हुए अपने गत जीवन की किन्हीं सुन्दर घटनाओं का स्मरण करने लगते तथा कुछ भविष्य के हवाई किले बांधने लगते। तब सहसा कोई सिनेमा का गीत गा उठता :—

"यार पहलू में छिपा था मुझे मालूम न था।
परदा गफ़लत का पड़ा था मुझे मालूम न था।"

उस समय कमरे में सन्नाटा हो जाता और जिन्होंने वह सिनेमा नहीं देखा था वे अस्पष्ट चित्र बनाकर उसे सुनते तथा जिन्होंने सुना था वे स्वीकृति या अस्वीकृति में सिर हिलाते हुए वह गाना सुनते। वे कल्पना करते मानो वे सिनेमा देख रहे हों। उस समय उन्हें सिनेमा के बीच में खाए हुए पान, पी हुई बीड़ी या सिगरेट तथा आसपास बैठी हुई किसी सुन्दरी की याद आजाती। तब वे ठण्डी सांस लेते और कहतेः—

"यार गाना बिलकुल वैसा ही नहीं रहा।"

"नहीं नहीं बिलकुल हूबहू वैसा ही रहा।"

तब गायक अपने बचाव में कहता, "वहां की बात ही दूसरी है। अब यहां न बाजा है, न गाने की आजादी।" इस बात पर सभी सहमत हो जाते, तब उत्साहित होकर दूसरा गाना शुरू करता :—

"साकी तेरी आंखों ने मस्ताना बना डाला।
अपने रुखे रोशन का परवाना बना डाला।"

बस वाहवा मच जाती। धीरे धीरे वाहवा की आवाज़ भी ऊँची होती जाती और गाने वाले का स्वर भी बढ़ता जाता। तात्पर्य यह कि

सभी अपनी स्थिति को भूल जाते, किन्तु उनकी वाहवाही और संगीत में दुनिया की सी ध्वनि न होती। वह सब 'हाय हाय !' की भांति मालूम पड़ता। उनके हृदय की पीड़ा और बेदर्दी संगीत की चोट से बाहर निकल पड़ती और वे उसे सब को सुनाने के लिये बेचैन हो उठते। तब सहसा वार्डर आ धमकता। वह उन्हें गालिया सुनाता, धमकियां बताता और बहुत करता तो दो-एक को उसी समय हथकड़ी में बांधकर जंगले में टंगवा देता। उस समय सन्नाटा हो जाता। अपनी हालत सब की समझ में आजाती। वे दिल मसोसकर तथा दांत पीसकर रह जाते। वार्डर के चले जाने पर वे फुसफुस करके उक्त घटना की टीका करने लगते। कोई वार्डर को गालिया देता :—

"यह वार्डर साला बड़ा बदमाश है।"

"अजी पूरा हरामज़ादा है, कमीना कहीं का।"

कोई कोई आपस में एक दूसरे को हल्ला मचाने और गड़बड़ करने के लिये दोषी ठहराने लगता। कोई कोई अपनी सफाई देता :—

"मैं तो यार धीरे धीरे बोल रहा था। वह तो हरीराम था जो जोर जोर मे बोल रहा था।"

हरीराम इस लांछन का विरोध करता और उन दोनों में गाली-गलौज या झगड़ा होजाता। तब सभी उस झगड़े को तय करने लगते और इस प्रकार वे फिर अपनी असली हालत भूलकर दूसरी ही ओर को बहक जाते।

रात के सन्नाटे में दूर पर दुनिया का कोलाहल एक साथ मिल कर ऊपर को उठता और किसी प्रियतम के सन्देश के समान धीरे धीरे हवा में उड़ता हुआ आता और जेल के ऊपर हलकी सुगन्ध की भांति छा जाता। वह धीमा और अस्पष्ट होता। उसमें गाड़ियों की खड़खड़ाहट, फेरीवालों की चिल्लाहट, घर को लौटते हुए मजदूरों का हल्ला, मोटरों की पोंपों, बाजों का स्वर और बाजार का मिश्रित शोर मिला हुआ होता था। उसे सुनकर वे उस मिश्रित हल्ले में से अपने अपने मतलब की

आवाज़ छूटने लगते :—

"किसी की गाड़ी जा रही है।"

"बैल तो तेज़ जान पड़ते हैं।"

"मगर गाड़ी ढीली है उसमें हल नहीं है।"

दूसरा दल कहता :—

"चार कचौड़ियां नहीं खाईं बहुत दिनों से।"

"और भगवान दास के रसगुल्ले।"

"वाहवा उसका क्या कहना है!"

परन्तु जब उन स्वरों में बाजे का संगीत या किसी मनचले रसिया का गाना सब से अलग और ऊंचा उठता, जिस प्रकार भीड़ में झंडा उठता है, तो वे ध्यान से उसे सुनते हुए उसकी आलोचना करने लगते :—

"मिलिटरी का बैंड है।"

"नहीं नहीं बाज़ारू है, वही रमज़ानी वाला।"

"शायद किसी की बारात आई है।"

"बारात नहीं है, वैसे ही कुछ जलसा होगा।"

"अरे जरा चुप रहो, सुनने भी दो!" कर्कश और असन्तुष्ट स्वर गूंज उठता। सब चुप होकर सुनने लगते। सहसा किसी को जोर जोर से खांसी आने लगती :—

"हत् तेरा नाश हो। इसी वक्त खांसना था।"

"तो क्या जानबूझ कर खांस रहा हूँ? खांसी भी किसी से रुकती है?"

और सचमुच वह न रुकती। इतना ही नहीं खांसी की छूत फैल जाती और कई आदमी खांसने लगते। उनके खांसने से बहुतों के गलों में खुजली सी उठने लगती और वे खांसते नहीं तो कम से कम गला ही साफ़ करके रह जाते।

"ओ हो! अब सभी को दमा होगया। कैसे बारी बारी से खांस रहे हैं।"

असन्तुष्ट आवाज़ फिर सुनाई पड़ती, ... फिर बन्द न होतीं वे क्रमशः उतार-चढ़ाव से, ज्वार-भाटा की भाँति उन कोठरियों के अन्दर गूँजने लगतीं।

इस प्रकार हमेशा उनके आनन्द में विघ्न आ जाता। वे कुछ सुन्दर देखना चाहते थे, मधुर सुनना चाहते थे, मगर उनके बदले में उन्हें जो कुछ मिलता वह कटु, कर्कश और घोर अप्रिय होता। उनकी हालत उस प्यासे मनुष्य की सी होती जिसका प्याला होंठों तक पहुँचकर गिर पड़े। तब वे झुँझलाकर दुनिया के आदमियों को अपने मन की शान्ति भंग करने के लिए गालियाँ देते :—

"कुछ ठिकाना ही नहीं है, साले हमेशा बाजे बजाते रहते हैं! ऐसी क्या खुशी इन्हें बनी रहती है?"

तब दूसरा ठंडी साँस लेकर कहता, "इन कमबख्तों का, आह, कितनी मौज हो रही है!"

उन्हें आनन्द की प्यास थी। एकता, अकेलापन, दबाऊ और कटु वायु-मण्डल उनकी आत्माओं को पीसे डालता था। वे परिवर्तन और मनोरंजन के प्यासे थे। "काश एक गाना सुनने को मिल जाता, एक तमाशा देखने को मिल जाता, या कोई बाजा ही सुनने को मिल जाता!" इस प्रकार वे तप्त श्वास लेकर कहते। वे सोचते, "दुनिया में मुक्त लोगों के लिये मनोरंजन की इतनी सामग्रियाँ होने पर भी वे सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि दिन-रात मनोरंजन की सामग्रियाँ बढ़ाते जाते हैं परन्तु हमें उन्होंने क्यों प्रत्येक मनोरंजन से वंचित कर रक्खा है? हमने अपराध किये उसके फलस्वरूप हमें दण्ड मिला, मगर हमें इस प्रकार के दबाऊ वायुमण्डल में रखना कहाँ तक उचित है? हमारी आत्माओं को शुष्क और तृषित रखने से उनका क्या लाभ है? हमें पतित करने में, तड़पाने में उनका क्या हित होता है?" इन गूढ़ प्रश्नों का उत्तर उनकी समझ में न आता और वे एक प्रकार की झुँझलाहट तथा बदला लेने की वृत्ति से भर जाते। उनकी सूखी और प्यासी आत्मायें उन

हो उठतीं और निरन्तर इस कटु प्याले को पीते रहने के लिये विवश किये जाने के कारण उनका स्वभाव कटु और पशुवत हो जाता।

ऐसा अप्राकृतिक उनका जीवन था—कटु, नीरस, पीड़ामय, शून्य, उजाड़ और तृषित। इसके कारण वे इतने ऊब जाते कि उन्हें अपनी परिस्थिति का विस्मरण होजाता। वे किसी न किसी प्रकार अपनी इस प्यास को बुझाने का प्रयत्न करते; उस समय उन्हें बाधाओं का तथा कठोर जेल-नियमों का ध्यान न रहता। वे चोरी से अपनी तुष्टि करने के उपाय निकालते तथा अवसर, साधन और सामग्री के अभाव से उनके मनोरंजन का जो स्वरूप होता वह बच्चों सरीखा, हास्यास्पद, घोर अश्लील, अस्तु दयनीय होता। तब सहसा वज्रपात की भांति कोई अधिकारी उनके रङ्ग में भङ्ग कर देता और वे क्षुब्ध, भयभीत और त्रासित चिड़ियों की नाईं तितर-बितर हो जाते। इससे न केवल उनके मनों की प्यास और अशान्ति दूनी होजाती बल्कि उनमें अन्य अप्रिय और पतनकारी मनोवेगों का समावेश भी होजाता था।

(३)

उस दिन मनोहर के गाने में विघ्न पड़ जाने तथा उस सम्बन्ध में कुछ कैदियों को दण्ड मिल जाने पर भी वे अपनी प्राकृतिक चित्त-वृत्ति को नहीं रोक सके। होली के दिन निकट आ रहे थे; बाहर दुनिया में मनोरंजन, उल्लास और उन्मत्तता का सागर उमड़ रहा था। उसकी लहरों की गर्जना, ढोल, झांझ, और अन्य बाजों की ध्वनि के रूप में, सारे दिन और रात जेल की दीवारों के ऊपर से उड़ते हुए किसी घोंसले की ओर जाने वाले पक्षी की भांति, निकला करती थी। उसके रंगीन पंखों की सरसराहट उनके हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर देती थी। उनका हृदय आनन्द से उछलने लगता, उनका चेहरा हर्ष से चमकने लगता और वे तमाशा देखने के लिये जाते हुए बच्चों की भांति चंचल हो उठते। लड़कपन के पड़े हुए संस्कारों को उखाड़ फेंकने में वे असमर्थ थे, मनोरंजन की प्राकृतिक प्यास को दबाना उनके लिये असम्भव था।

खास कर जब कि बाहर सारी दुनिया (जिसमें उन्हीं सरीखे मनुष्य रहते थे) आनन्द मना रही थी तब वे अपने को आनन्दित करने से कैसे रोक सकते थे? खासकर जब कि वे अपने को बाहर रहने वाले प्राणियों (मनुष्यों) सरीखा ही समझते थे तब उनकी समझ में नहीं आता था कि जो काम सभी लोग बाहर निर्विघ्न कर रहे हैं उसी को करना उनके लिये गुनाह कैसे था? शारीरिक भूख-प्यास की भांति इस मानसिक भूख-प्यास की तृप्ति उनके लिये कैसे मना थी? वे नहीं समझ सकते थे कि समाज उन्हें मनुष्य नहीं समझता है। वे पशु हैं अस्तु उन्हें मनुष्यों की सारी बातें, आदतें और स्वभाव भूलकर पशुवत जीवन बिताना चाहिये। उन्हें सारी मानुषीय भावनायें मार डालना चाहिये और अपने मन को बिलकुल नीरस, कोमल भावना-शून्य तथा जड़ बना लेना चाहिये।

अफ़सोस! वर्तमान दण्ड-विधान की इस गुप्त मन्शा का उन्हें पता न था।

होली का दिन आया। उस दिन बाहर दुनिया में तूफ़ान सा उठ रहा था। वह सारा शोर इकट्ठा होकर और मिलकर जेल की दीवारों से टकरा रहा था जिसकी प्रत्येक चोट पर कैदियों का हृदय बाहर को कूदा पड़ता था। कैदियों ने उस दिन अपने कपड़ों को साफ करके पहना था। जिस किसी भाग्यशाली को कहीं से तेल की कुछ बूंदें मिल गई थीं उन्हीं को मुंह में चुपड़कर वह बड़ी शान से इधर उधर फिर रहा था। कोई कोई ऐसे भी रईस और शौकीन थे कि जिन्होंने बाहर से इत्र का फोहा मंगा लिया था। वे उसे कान में खोंसे हुए स्वयं उसकी सुगन्धि न लेकर दूसरों को गर्व के साथ उसकी सुगन्धि देते फिरते थे, मानो वे उनसे कहते थे, "देखो जी हम इत्र लगाये हैं, इत्र!"

दूसरे उनके इत्र की तारीफ़ करते और अपना मत देते :—

"क्या हिना है?"

"नहीं ख़स है।"

"अजी केवड़ा है केवड़ा, मैं खूब पहिचानता हूं। मेरे घर के पास

गर्दे की दुकान……….।"

"अरे तुम क्या जानो! मेरे घर में खुद इत्र का व्यापार होता है। यह गुलाब है!"

वह नवीन इन बातों को गर्व से मुस्कराता हुआ सुनता और इत्र का मनमाना नाम बताता क्योंकि उसे स्वयं उनकी पहचान न होती थी।

कुछ लोगों ने पान मंगा लिये थे (चोरी से) और वे उसे चबाकर जानबूझकर अपने होठों को लाल किये हुए दूसरों को दिखाते फिरते थे। कुछ लोगों ने भंग और चरस इत्यादि मादक पदार्थ चोरी से मंगा लिये थे जिन्हें वे बड़े गर्व से अपने मित्रों में बैठकर दूसरों को दिखा दिखाकर पी रहे थे। इतना ही नहीं नशे से अपनी आंखों को सुर्ख किये हुए वे जगह जगह पर दूसरों से उसकी शेखी बघारते फिर रहे थे :—

"आज खूब छनी यार! मैंने दो तोला बूटी मंगा ली थी, जो कहीं थोड़ा सा दूध मिल जाता तो……….।"

"मैंने तो चरस मंगाई थी। पूरा एक तोला। और एक ही चिलम में बैठकर पी गये! खूब रङ्ग रहा! अब मेरी आखें झपक रही हैं।"

जो लोग गरीब थे या जिन्हें वे अनुपम पदार्थ सेवन करने के लिये नहीं मिले थे वे ईर्षा और दीनता-मिश्रित हंसी हंसते हुए उनकी बातें सुन रहे थे और अपने मन में उन्हें बड़ा भाग्यशाली समझ रहे थे।

इस प्रकार जहां कानून की इज्ज़त का पाठ पढ़ाने के लिये उन्हें रक्खा गया था वहां वे क़ानून भंग करने का अभ्यास कर रहे थे। उन्हें ऐसा करने के लिये मजबूर किया जारहा था।

दोपहर को वार्डर की नज़र बचाकर बीस-पच्चीस कैदी एक स्थान पर जमा हुए। मनोहर ने पैर में घुंघरू पहने—घुँघरू टीन के छोटे छोटे टुकड़े काटकर और उनको एक सुतली में पिरोकर बना लिये गये थे। लाल और हरे रंग से उसके गालों पर फूल बनाये गये थे और रंगीन सूत के गहने बनाकर उसके हाथों और गले में पहनाये गये थे। उसकी नाक में एक चमकदार कांच का दाना लटकाया गया था, सीने

पर कपड़े के गेंद बंधे पड़े थे और न जाने कहाँ से एक रंगीन कपड़ा लाकर ओढ़नी की तरह उसके सिर पर उढ़ा दिया गया था। मालूम पड़ता है कि कौतुक लाने का मतलब भद्दा और हास्यास्पद नकल दिखाना था जिसे देखकर किसी भी भले आदमी को आश्चर्य और हँसी आये बिना न रहती। मगर वे कैदी उस स्वांग के उत्सव को उतनी ही गम्भीरता और आनन्द से देख रहे थे जितना कि बच्चे अपने मिट्टी के घरों और गुड़ियों के खेल को देखते हैं। मनुष्य की प्राकृतिक कला और सौन्दर्य-वृत्ति मानों कुचली जाकर वहां पर किसी प्रकार सांस लेने के लिये छटपटा रही थी। या ऐसा भास होता था मानों मिठाइयों का भूखा किसी भद्दे चित्र में बनी हुई मिठाइयों को देखकर अपनी इच्छा की तृप्ति कर रहा था। उन अभागों की वह प्राकृतिक प्यास किसी प्रकार चोरी से, भद्दे रूप में, खतरे को भूलकर तृप्त की जा रही थी।

किसी के हाथ में थाली थी तो कोई लोटा लिये हुए था। कोई एक टीन का जंग लगा हुआ फूटा डब्बा ले आया था तो कोई पानी भरने की कोठी को अपनी टांगों के नीचे दबाये हुए बैठा था वे सब बाजों के स्थान में काम में लाये जा रहे थे। उनको एक साथ नाना प्रकार से पीटकर एक अद्भुत स्वर उत्पन्न किया जा रहा था। उसी स्वर के बीच में मनोहर घूंघट काढ़े हुए, ठुमक-ठुमक कर,हाव भाव दिखाता हुआ नाच रहा था। सब के चेहरों पर आनन्द, हास्य और गम्भीरता थी, मानों वे सचमुच किसी नृत्य-सभा में एक सुन्दर नर्तकी के सामने बैठे हुए थे। सच पूछिये तो वहां वास्तविकता के स्थान पर काल्पनिकता अधिक थी। वे 'कठौती में गंगा' की कल्पना कर रहे थे। जब मनोहर किसी के सामने ठिठककर कोई हावभाव दिखाता तो वह आनन्द से विह्वल हो जाता और उसके पास जो कुछ भी उस कामिनी को भेंट करने योग्य होता वह वहीं उसे दे डालता। इस प्रकार किसी ने भङ्ग दी, तो किसी ने चरस दी, तो कोई बीड़ियों का त्याग कर बैठा; किसी ने पान दिया, किसी ने तम्बाकू की पुड़िया सामने फेंक दी और किसी ने तो पैसे

इकन्नी, दुअन्नी इत्यादि फेंककर त्याग की हद कर दी।

इन हावभावों और भेंटों पर हँसी का फुहारा छूटने लगा और ऐसा रंग जमा कि जिसकी उपमा नहीं है।

पहले 'अंगिया लागी' वाला गाना शुरू हुआ। इसने सब के दिलों को खोल दिया: वर्षों से हृदयों में कुचला हुआ और दबा हुआ प्रेम, सौन्दर्य और कला-पूजा तथा मनो-विनोद-पिपासा बह पड़ी—ऐसे भद्दे और अश्लील रूप में कि जिसे देखकर लाज को भी लाज लगे।

बाहर दुनिया में इसी समय होली का हुल्लड़ उठ रहा था और उसकी निश्चित ध्वनि दूर पर गर्जते हुए समुद्र के समान धीरे धीरे वायुमण्डल को उत्तेजित बना रही थी। जान पड़ता था कि वार्ड में एक ओर साया में बैठा हुआ पहरेदार भंग के नशे में उसी हुल्लड़ का विश्लेषण करने में लगा हुआ था, अस्तु उसने कैदियों की इस अपूर्व होली को नहीं सुना। कौन जाने कैदियों ने आज उसे भी मिला लिया हो। इसी समय बाहिरी होली की एक लहर गरजती हुई जेल के पास की सड़क से निकली :—

"स र र र र र कबीर!"

सब कैदी चुपचाप सुनने लगे।

कबीर बड़ा ही अश्लील गाया गया जिसमें भीड़ ने सहयोग दिया और ढोल, मजीरा और झांझों के शोर ने उसमें मिलकर शृंगार रस को भयङ्कर और बीभत्स बना दिया। एक लड़के की पतली आवाज़ तेजी से हवा को फाड़ती हुई सब के ऊपर उठी और उस हल्ले में डूब गई। पेड़ पर बैठे हुए कौवे ने दो बार कांव कांव की और सशंकित होकर वह वहा से उठकर दूसरे पेड़ पर जा बैठा। भीड़ हल्ला मचाती और ढोल पीटती हुई दूर निकल गई।

इस घटना से जेल के जीवों में नई उत्तेजना फैल गई। उनके हृदय जोर २ से धड़कने लगे और इस बार उन्होंने अधिक उल्लास और वेग से गाना शुरू किया:—

"कटरिया सइयां मन मारो। नज़रिया सइयां मन मारो॥"

"हो हो"

"हा हा"

"ही ही"

"हू हू"

अद्भुत स्वर अपने आप उनके मुँह से निकलने लगे जैसे रेल के इंजन से गर्म भाफ निकलती है। भीड़ का गाना दूर पर हुल्लड़ में एक रस होरहा था। ये लोग मानों दुनिया को, उसके हुल्लड़ को, उसके होली मनाने वालों को दबी हुई आवाज में पुकार २ कर कह रहे थे:—

"सुनो हम भी होली मनाते हैं। हम भी मनुष्य हैं। हम भी गा बजा सकते हैं।"

एक कैदी बिलकुल नंग-धड़ङ्ग—सिर्फ एक लंगोटी लगाये हुए, सारे बदन में राख मले हुए, मुँह में कालिख पोते हुए, सिर पर एक कागज की ऊंची नोकदार 'गधा टोपी' लगाये हुए, हाथ में नीम के पत्तों का एक गुच्छा लिये हुए तथा लंगोटी के सामने लाल कपड़े से अश्लील अङ्ग बनाये हुए आ धमका और मनोहर के आगे पीछे अश्लील चेष्टायें करता हुआ नाचने लगा।

उसके आगमन से आनन्द और मनोरंजन चौगुना बढ़ गया। उस समय उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि ये संसार के सब से अधिक अभागे, पीड़ित, और दुखी प्राणी हैं जिन्हें समाज मनुष्य नहीं समझता और जिन्हें मनुष्यों के किसी आचरण की नकल करने का अधिकार नहीं है। गाना चल रहा था:—

"बिन बादर बिजली कहां चमकी, बिन बादर।
गोरी के माथे में बिंदिया चमकी, बिन बादर।"

बस मानों बिजली ही चमक रही थी और जितने वहां पर बैठे थे वे सब इतने चकाचौंध होरहे थे कि उन्हें बिलकुल नहीं दिख रहा था क्योंकि उनके सिर पर बादल मंडरा रहे थे और वे जब वज्रपात करने लगे तब कहीं उन्हें होश आया।

उन्होंने आँखें खोलकर देखा कि जेल-अफ़सर कई वार्डरों और जमादारों के साथ उनके सिर पर खड़े हैं। यदि किसी ने उस लड़के को देखा हो जो लड्डू खाने की आशा से गया हो मगर थप्पड़ें खाकर लौटा हो, तो उसे क़ैदियों की उस समय की स्थिति का पता चल सकता है। जैसे एक शोर करता हुआ इंजन सहसा फ़ेल होकर बन्द होजाय उसी प्रकार एकदम उस सभा में सन्नाटा छागया। उनके अद्भुत बाजे हाथों से छूटकर गिर पड़े। वे सब लोग सकपकाकर उठ बैठे और काँपकर भयभीत और दीन दृष्टि से इधर उधर देखने लगे मानों वे ज़मीन में छिपने के लिये कोई दरी या छेद ढूँढ रहे थे।

"मारो हरामज़ादों को!" कर्कश हुक्म सुन पड़ा। इसके बाद "हाय हुज़ूर" "हाय अन्नदाता" इत्यादि प्रचलित नारों से उनका सारा मनोरंजन, सौंदर्योपासना, कलाप्रियता और होली का उत्सव बह निकला।

एक बीड़ी के लिये

बाला जब पहले-पहल जेल में प्रविष्ट हुआ था तो उसका शरीर यद्यपि दुबला-पतला था तो भी उसके चेहरे पर कुछ आत्म-विश्वास, कुछ जीवन और कुछ आशा चमकती थी परन्तु उन चहारदिवारी और मोटे जंगलों (सीकचों) के अन्दर घिरे एक मास तक रहने से उसकी आकृति बिलकुल बदल गई, उसका चेहरा पीला व दुबला होगया; उसके दांत जो बड़े बड़े थे बाहर को निकले रहने लगे; उसके चेहरे पर दीनता, निराशा और चिन्ता झलकने लगी; उसकी आंखों में करुणा चमकने लगी और उसका स्वर बड़ा ही दीन और कोमल होगया

जेल के भयंकर वायुमण्डल तथा जीवन ने उस गरीब किसान को पीसना शुरू किया। इसके अतिरिक्त उसके बाल-बच्चों की चिन्ता, जिन्हें वह भूखों मरते देखकर स्वयं उनका पेट पालन करने के लिये शहर में कमाने को निकल पड़ा था, उसे खाने लगी। दुर्भाग्य उसका तथा उसके बाल-बच्चों का कि वह आवारागर्दी के अपराध में, पांच सौ रुपया जमानत न दे सकने के कारण, एक साल के लिये जेल में भेज दिया गया था

यही कारण था कि उसका मन एक घोर अशान्ति और मूढ़ता से भर गया। वह चारों ओर को देखता मगर अथाह समुद्र में बहने वाली एकान्त नौका में बैठे हुए प्राणी के समान उसे कहीं आश्रय दिखाई न पड़ता था। सहसा उसे अपनी चिर सहचरी तम्बाकू की याद आई। वह महीने भर से उसे भूल गया था, क्योंकि उसके जीवन में इस अवसर में अद्भुत घटनायें घट रही थीं जिन्होंने उसे आत्म-विस्मृत सा कर रखा

था। तम्बाकू की याद आते ही उसका चेहरा आशा से खिल उठा मानो समुद्र में बहने वाले को किसी जहाज का मस्तूल दिखाई पड़ गया हो।

उसके प्राण तम्बाकू तम्बाकू चिल्लाने लगे। उसे ऐसा जान पड़ा मानो एक चिलम तम्बाकू पीने से ही उसका दुःख-स्वप्न भंग हो जायगा। वह अपने खेत की बात सोचते सोचते चला। उन दिनों जब वह थक जाता तो एक पेड़ की छाया में बैठ जाता था और अलाव के पास रखी हुई चिलम में पास रखी हुई थैली से तम्बाकू निकालकर भरता तथा उसे बड़े मजे से पीता था। चलते २ वह उन कैदियों के पास पहुंचा जो तम्बाकू पीते थे। उसने एक से कहा, "भाई एक चिलम तम्बाकू पिला दो तो बड़ी मिहरबानी हो।"

"तम्बाकू?" कैदी आश्चर्य से चिल्ला उठा मानो किसी ने उससे कोहनूर हीरा ही मांगा हो।

"हां भाई, बहुत दिनों से नहीं मिला। बड़ी तलब लगी है।"

कैदी ठठाकर हंस पड़ा और बोला, "तुम्हारी सूरत बड़ी अच्छी है न! मुँह धोकर आये हो कि नहीं? देखना भाई तम्बाकू मांगने आये हैं जैसे इनके बाप यहां कमाकर रख गये हों।"

बेचारा बाला सिटपिटा गया। वह कुछ बोलने ही वाला था मगर दूसरा कैदी बोल उठा, "अजी कहां रहते हो? यह जेलखाना है। यहां तम्बाकू सोने के भाव बिकता है। अगर पैसे हों तो निकालो, अभी तम्बाकू लाये देता हूं।"

"पैसे कहां से आये मुझ गरीब के पास!" बाला ने बड़ी निराशा और दुःख से कहा और वह चलने लगा। इसी समय पहले कैदी ने अपनी टोपी से एक बीड़ी निकाली और उसमें चिनगारी लगाकर वह उसे पीने लगा। बाला ने लौटकर उसकी ओर देखा तो उसने मुँह बना दिया।

उसी घड़ी से बाला को तम्बाकू की या बीड़ी की प्यास लगी। वह कहीं जाता, कुछ भी करता, मगर बीड़ी का ध्यान उसके मन से न हटता। वह दूसरों को जिनके पास पैसे थे बीड़ी और तम्बाकू पीते देखता तो धीरे

से उनके पास जाकर बैठ जाता कि शायद एक फूंक लगाने को मिल जाय लेकिन ....।

'क्यों बैठा है, क्यों आया हमारे पास ?' वह कुत्ते की तरह दुत्कारा जाता। तब वह अधिक से अधिक दीनता को अपनी वाणी में भरकर कहता, 'महाराज, एक फूंक मुझे भी मिल जाय।' लेकिन इसका परिणाम यह होता कि उसे एक-आध गाली या धक्का मिलता। इस प्रकार बीड़ी के लिये बाला ने सबसे पहले स्वाभिमान की तिलाञ्जलि दे दी। जिसने कभी दूसरे के सामने हाथ न फैलाया था, जिसने अपने बाल-बच्चों के भूखे मरते रहने पर भी भिक्षा का आश्रय न लेकर स्वावलम्बन और उद्यम का आश्रय लिया था वही आज एक बीड़ी के लिये छोटे छोटे आदमियों के सामने हाथ पसारकर कहता हुआ दिखाई पड़ने लगा, 'भइया जी, एक बीड़ी मिल जाय।'

कभी २ बाला की तकदीर खुल जाती थी अर्थात् कभी २ कोई कोई दानी कैदी, इस विश्वास से कि कैदियों को बीड़ियां बांटने से शायद भगवान प्रसन्न हो जाय या खुदा तक उनकी दुआ पहुंचे और वह छोड़ दिये जायें, बाला को एक बीड़ी फेंक देते थे। तब उसे उठाकर बड़ा आनन्द से उछलता हुआ अपने स्थान पर पहुंचता और थोड़ा २ करके तीन बार में उस बीड़ी को पीता। लेकिन ऐसे अवसर बहुत कम आते थे, अस्तु बाला को अक्सर ज़बान बांधकर रखनी पड़ती थी। उस समय वह पास ही बैठे हुए तथा बीड़ी पीते हुए कैदियों की ओर एकटक लगाकर देखा करता और अपनी आंखों, नाक और कल्पना द्वारा वह बीड़ी की तलब मिटाने की चेष्टा किया करता था।

इस प्रकार बीड़ी के एक टुकड़े के लिये तड़पने और पतन की ओर जाने वाला अकेला बाला ही न था बल्कि उस सर्किल में सैकड़ों अन्य अभागे तथा गरीब कैदी थे जो बीड़ियों के लिये न जाने क्या २ करने को तैयार थे और कर रहे थे। बाला ने वहां पर एक आदमी देखा जिसे बीस वर्ष की सज़ा हुई थी, जो अपनी औरत का सूद सिर्फ चन्द बीड़ियों

के लिये करके आया था। कुछ नौजवान लड़के ऐसे थे जो सिर्फ बीड़ियों के लिये बदमाशों के हाथ में अपना आत्म-समर्पण कर चुके थे. कुछ लोग ऐसे थे जो यद्यपि ऊंची जाति के थे तो भी बीडियों के लिये दूसरों के बर्तन मांजते, कपड़े धोते, उनकी मालिश इत्यादि टहल करते थे, कुछ लोग छूतछात और ऊंच-नीच का विचार छोड़कर दूसरों की जूठी बीड़ियों के टुकड़े चुनते हुए फिरा करते थे। इस प्रकार कुछ लोग बीड़ियों के लिये घोर पतन के गड्ढे में गिरे थे तथा कुछ लोग केवल पास में बीड़ियां होने के कारण रईस बन कर रहते थे। सभी लोग उन रईसों की चापलूसी करते, उनकी हां में हां मिलाते तथा उनकी गुलामी किया करते थे।

यह सब दृश्य देखकर बाला के हृदय में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसके जातिगत संस्कारों ने जोर मारा और उसने सोचा कि ऐसा बीड़ी में क्या जादू है। धिक्कार है ऐसे बीड़ी पीने को, परन्तु······

परन्तु जेल का भयंकर जीवन और दबाऊ वायुमण्डल उसकी आत्मा को दबाने लगा। उसके अन्तःकरण से करुण पुकार निकलने लगी, 'बीड़ी! एक बीड़ी! सिर्फ एक ही टुकड़ा!' अब उसके मन में भयंकर अन्तर्द्वन्द्व शुरू हुआ। कई बार वह ऐसे घृणित जीवन से सिहर उठता और अपने आपको ऐसे नीचे विचारों के लिये धिक्कारता मगर फिर कोई उसके सामने से बीड़ी पीता हुआ निकल जाता और उसकी तबियत बेचैन हो उठती। वह सोचता, 'क्या करूं?' कभी जेल के 'लौंडों' में से कोई बीड़ियों का बंडल उछालता हुआ आता और एक की जगह दो दो बीड़िया सुलगाकर पीने लगता, फिर किसी को वह ये आधी पी हुई बीड़िया बड़ी लापरवाही तथा फैय्याज़ी के साथ दे देता। तब बाला सोचता, 'यार कहीं मैं भी जरा सुन्दर और कम उम्र का होता!' लेकिन इस विचार से वह बहुत शर्मा जाता और चुपके से चारों ओर को देखता कि कहीं किसी ने उसके मन का भाव ताड़ तो नहीं लिया।

अन्त में 'बादल का रंग देखकर तबियत मचल गयी' के अनुसार 'भदरंग जेल भोगकर तबियत फिसल गई' हो गया। बाला ने

सोचा कि हो न हो किसी 'रईस' की नौकरी करने लगूं। अस्तु वह एक रईस के पास पहुँचा और दीनता भरे स्वर में बोला, "भैइया जी, मैं आपके बरतन मांज दिया करूंगा और आपकी जो खिदमत होगी वह कर दिया करूंगा। मुझे आप दो-एक बीड़ी दे दिया करें। गरीब आदमी हूं।"

'भइया जी' ने बाला की ओर गौर से देखा। दरिद्रता, दीनता और करुणा की सजीव मूर्ति थी। ऐसी मूर्ति कि जिसे देखकर अनायास ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। 'भइया जी' का मन घृणा से भर गया। उसने कहा, "हट उधर! तुझसे कौन काम करायेगा? देखो तो इसकी सूरत। चल भाग।"

"भइया जी आप जहां दूसरे को चार बीड़ियां देते हैं वहां मुझे सिर्फ एक ही देना। गरीब आदमी हूँ, मेरे भी दिन कट जायेंगे।"

"अरे चलता है कि नहीं। भाग!"

बेचारा बाला वहां से नीची गरदन करके चलता हुआ। उसकी बुद्धि पर एक अजीब जड़ पर्दा पड़ गया था। वह धीरे धीरे अपनी स्थिति भूलता जा रहा था। कौन जाने इन बीड़ियों की चिन्ता में उसे अपने बाल-बच्चों की सुधि थी या नहीं। भइया जी द्वारा ठुकराया जाकर बाला अन्य दो-चार 'भइयों' के पास पहुँचा मगर उसकी सूरत और मूर्ति ही ऐसी थी कि उसे किसी ने नौकर न रक्खा। अब बाला के मन में घोर द्वन्द उठा। उसने बार बार उस विचार को अपने मन में स्थान दिया जिससे वह पहले शर्माता था मगर सिर्फ विचार ही से किसी की तृप्ति थोड़े ही होती है।

× × × ×

आजकल बाला ने लोगों से बीड़िया मागना बन्द कर दी थीं। लोग उसे कभी कभी एकान्त में बीड़ी पीते हुए देखा करते। कुछ कैदियों ने आश्चर्य और उत्सुकता से पूछा भी, "यार आजकल तो बड़े मालदार हो रहे हो। खूब बीड़ियां उड़ाते हो!"

बाला ने शर्माती हुई मुस्कराहट से उत्तर दिया, "कहा भइया, ऐसे

हो मिल जाती हैं। आप सरीखे भले आदमी दे देते हैं। वही पीता हूँ।"

किन्तु इसका रहस्य शीघ्र ही खुल गया। उस समय मालूम पड़ा कि बाला ने पहले आत्माभिमान की बलि दी थी मगर अब वह 'धरम' को भी छोड़ चुका था; बात यह थी कि जब कोई आदमी बीड़ी पीता तो बाला उस स्थान पर पहुँच जाता और उसके आसपास उदासीन मुंह किये हुए किसी बहाने से घूमता रहता। जब वह बीड़ी पी चुकता तो उसका शेष टुकड़ा मुंह से निकालकर वह फेंककर चला जाता। बाला तिरछी नज़र से उस अमूल्य तथा महत्वपूर्ण भू भाग को देखता रहता। उस आदमी के चले जाने पर वह इधर उधर देखता और धीरे धीरे उस स्थान की ओर बढ़ता; फिर औरों की नजर बचाकर, झुककर हाथों से या पैर की उंगलियों से, खड़े खड़े या झुककर या बैठकर, जैसा मौका होता उसी के अनुसार वह टुकड़ा चुन लेता। बस दिन भर में चार-छः टुकड़े इसी प्रकार जमा हो जाते थे।

एक और भी तरकीब थी। बीड़ी पीने वाले अक्सर ख़ास आड़ की जगहों पर बैठकर बीड़ियां पिया करते थे और शेष जूठे टुकड़ों को वहीं फेंककर चले जाते थे। इसी प्रकार रात को जो लोग बीड़ियां पीते वे उन टुकड़ों को जगले के बाहर दीवार के पास ही फेंक दिया करते थे। बाला बड़े सबेरे उठता और ज्योंही जेल खुलती, त्योंही सब की नजर बचाकर उक्त स्थानों का चक्कर लगा आता। इस प्रकार कुछ टुकड़े हाथ लग ही जाते थे। इस प्रकार वह भ्रष्ट हो चुका था मगर अपनी भ्रष्टता दिखाने में शरमाता था। अभी लज्जा बाकी थी।

वह दिन भी आख़िर आ ही गया। जेल में कुछ निर्लज्ज और पतित प्राणी ऐसे थे जो खुल्लमखुल्ला दूसरों के टुकड़े उठाकर पिया करते थे। वे उपरोक्त स्थानों में नित्य बीड़ियों के टुकड़ों के शिकार के लिये जाते थे और इस प्रकार उन्हें बीड़ियों की कमी न रहती थी। उन्होंने देखा कि अब उनके बीड़ी-क्षेत्र खाली रहते हैं अस्तु उन्होंने निगरानी रक्खी और अन्त में चोर पकड़ा गया। पहले बाला शरमाया और दो

एक दिनों तक उसने टुकड़े चुनना बन्द कर दिया, मगर फिर उससे नहीं रहा गया। आत्मसम्मान और धर्म के बाद लज्जा की भी आहुति दे दी गई।

अब बीड़ी-टुकड़ा-क्षेत्रों में बड़ा मनोरंजक दृश्य दिखाई पड़ने लगा। कभी बाला आगे होजाता तो दूसरे शिकारी उसके पीछे दौड़ते। उन सब की दौड़ बच्चों सरीखी या अन्न-दान लेने के लिये जाते हुए मर-भुखों सरीखी होती थी। वे दरिद्र, गन्दी और घिनौनी मूर्तियां एक के पीछे एक बेहताशा दौड़तीं और उक्त स्थानों में जाकर जल्दी २ जमीन की ओर देखती हुई आगे बढ़ने लगतीं। ज्योंही एक बीड़ी का टुकड़ा दिखता, वे सबके सब उस पर झपट पड़ते। जिसके हाथ में वह आजाता उसका चेहरा विजय और आनन्द से चमकने लगता तथा दूसरे उसकी ओर ईर्षा भरी दृष्टि से देखते। कभी २ इस बारे में उन लोगों में छीना-झपटी और लड़ाई होजाती थी।

इसी प्रकार दिन कट रहे थे।

(२)

"क्यों भाई, दशहरा के कितने दिन बाकी हैं ?"

"होंगे कोई बीस दिन।"

"सुनते हैं कि उस दिन कैदियों को लड्डू मिलते हैं ?"

उपरोक्त बातचीत बाला और एक कैदी के बीच में हो रही थी। कैदी ने जवाब दिया, "हां यार, उस दिन बड़ा मज़ा रहता है। चार चार लड्डू, पूरियां, आलू की भाजी, सेव वगैरह मिलते हैं। खूब मौज रहती है। क्यों क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, वैसे ही······"बाला ने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया।

कैदी कुछ २ भांप गया। उसने जरा पास आकर पूछा, "क्या लड्डू बेचने का विचार है ?"

"हां, नहीं·········"बाला ने कुछ झेंपते हुए उत्तर दिया।

"उं ह, कोई बात नहीं" कैदी ने अपना सिर हिलाकर मानों बाला के संकोच को हिलाकर दूर फेंक दिया। "क्या बेचने का विचार है?"

"हां" संक्षेप, धीमा और लज्जित उत्तर मिला।

"ठीक है। मैं खरीद लूंगा।"

"क्या मिलेगा?"

"क्या मिलेगा, चार-छः बीड़ियां दे दूंगा", लापरवाही से व्यापारी ने कहा।

"चार-छः बीड़ियां? कम से कम......"

"उंह दो-चार और ले लेना" पक्के उस्ताद ने बिलकुल उदारता की हद कर दी।

"कम से कम दो बंडल तो देना भाई।"

"दो बंडल?" व्यापारी ने आश्चर्य से कहा, मानों अन्धेर की हद हो गई थी।

"दो नहीं तो एक तो देना ही।" बाला ने दीनता के स्वर में कहा, मानो वह भीख मांग रहा हो और व्यापारी उसके साथ अहसान कर रहा हो।

"खैर एक बंडल ही ले लेना। अभी दूं पेशगी? ठीक है। बेई-मानी न करना यह लो।"

एक बंडल झट से बाला के हाथों में गिरा। बाला के हाथ कांपने लगे। उसकी आंखें हंसने लगीं, चेहरा खिल गया, मानों संसार की सर्व श्रेष्ठ निधि उसके हाथों पर बिना प्रयास के आसमान से टपक पड़ी हो। उसने सोचा. 'अ रे रे रे, एक बंडल! पूरी पच्चीस बीड़िया!' फिर कहा, "बेईमानी करके कहां जाऊंगा भाई? ज्योंही मिलेंगे त्योंही तुम्हें दे दूंगा।"

धीरे २ दशहरा पास आने लगा। कैदियों का मन आशा और उल्लास से उछल रहा था कि 'अब लड्डू मिलेंगे, पूरियां मिलेंगी और सेव........।' महीनों और वर्षों की नीरसता उस दिन भंग होने को थी। संसार का सर्व-श्रेष्ठ पदार्थ लड्डू मिलने को थे मानों जन्म-जन्मान्तर के दुःख और पाप उस दिन कटने वाले थे। अस्तु सभी के हृदयों में आनन्द और आशा थी मगर बाला की बीड़िया धीरे २ समाप्त हो रही

थीं। पचीस का ढेर एकदम पास आजाने से वह ख़र्चीला भी होगया था। पहले ही दिन उसने छः बीड़ियां पी डालीं और एक बीड़ी उसने 'शिकारियों' को पिला दी। उस दिन उस मंडली में उसकी बड़ी ही तारीफ़ हुई :—

"बाला आजकल मालदार होगया है भाई!"

"वाह यार दिखाना तो! अरे खूब बीड़ियां हैं! कहां से पाईं?"

"एक हमें भी पिलाओ।"

तब बाला बड़ा उदासीन और लापरवाह मुँह बनाकर बोला, "कहां हैं यार बहुत? एक ही बंडल तो है। ऐसे ही मिल गया है।"

"हूँ हूँ! जान पड़ता है घर से खर्चा मंगा लिया है। बड़े छुपे रुस्तम निकले। वाह।"

बाला ने एक बीड़ी उन्हें दे दी। तब :—

"बाला यार, बड़ा मस्त पट्ठा है!"

"बड़ा दिलदार है" इत्यादि। इस प्रकार बाला की एक बीड़ी उन चील-कौवों ने खसोट ली।

अफसोस दशहरा के पास आने पर बाला का जी बहुत ही छोटा होगया और उस ख़ास दिन तो उसका हृदय बिलकुल डूब ही गया। इसके दो कारण थे। पहला यह कि उसे सोने सरीखे बड़े बड़े चार लड्डू व्यापारी के हाथों में रख देना पड़े; दूसरा यह कि उस दिन बाला के पास एक भी बीड़ी न थी।

"एक बीड़ी तो दे दो यार," बाला व्यापारी से गिड़गिड़ाया।

"न" पक्के व्यापारी का संक्षेप उत्तर मिला।

"अरे दे दो भाई! आज त्योहार है। जरा खाना खाकर पिऊँगा।"

"तो फिर सेव मुझे दे दो।"

"अरे फिर मैं तो भूखा ही मर जाऊंगा।"

"मैं क्या करूं। बीड़ियां कुछ मुफ्त थोड़े ही आती हैं," बड़ा ही उदासीन चेहरा बनाकर ख़रीदार बोला।

थोड़ी देर गिड़गिड़ाने के बाद बाला ने अपने सेव भी उसके हवाले कर दिये—सिर्फ एक बीड़ी के लिये।

उस दिन बाला का पेट नहीं भरा। इसके दो कारण थे। पहला तो यह था कि खाद्य पदार्थ बिलकुल कम रह गया था—सिर्फ छः पूरियां। दूसरा यह था कि दूसरों को लड्डू खाते देखकर उसकी तृष्णा और भूख चौगुनी हो उठी थी। वह चुपचाप दीन और क्षुधित नेत्रों से दूसरों को हँस हँसकर लड्डू खाते हुए देखता रहा।

एक दिन बाला बीमार पड़ गया। वह बहुत सख्त बीमार हो गया। अस्पताल में वह कुछ दिनों तक रक्खा गया मगर बाद में वहां से निकाल दिया गया। उस समय उसकी सूरत बड़ी ही रोमांचकारी थी। वह हड्डियों का ढांचा होगया था। उसकी खाल लटक गई थी। पैरों के तलुओं में बड़े बड़े दरें फट गये थे जिनसे लोहू टपकता था। सारे बदन में चाम जूँ होगई थीं तथा उसकी चमड़ी में मैल और मरी हुई चमड़ी के संयोग से एक मोटी काली तह जम गई थी जिसे देखकर सुअर की पीठ की याद आती थी। उसका चेहरा भयंकर, दयनीय, घृणित, तथा अद्‌भुत होगया था। उसके बड़े बड़े मैले दांत पागल कुत्ते की तरह बाहर निकले रहते, उसके भद्दे मोटे होंठ नीचे को लटके रहते थे। उसके चेहरे में झुर्रियां पड़ गईं थीं मगर उसकी बड़ी बड़ी, गड्ढे में धँसी हुई आंखों से एक अजीब चमक निकला करती थी। उस चमक में अनन्त क्षुधा, पिपासा और दैन्य भाव था। वह हर किसी की ओर उन कांच की सी आंखों से देखा करता। फिर वह खोखली परन्तु गहरी आवाज से बोलता, "एक बीड़ी दे दो भाई!"

वह बिलकुल प्रेत-मूर्ति सा प्रतीत होता था। कोई उसके साथ सहानुभूति न करता, कोई उसे अपने पास न बैठने देता। अब वह शिकस्त हो गया था। बीड़ी-टुकड़ा-क्षेत्र में दौड़ने की उसमें सामर्थ्य न थी। उसे टुकड़ा भी मिलना दूभर होगया था।

उसे अस्पताल से विशेष खुराक (दूध, गेहूँ की रोटी, गोश्त,

चावल इत्यादि) खाने को मिलता था, लेकिन वह एक बीड़ी के लिये अपना दूध बेच देता, और अपने जीवन तथा स्वास्थ्य की चिन्ता न करता। इस प्रकार वह दिनों-दिन घुलता गया। अफसरों को उसकी यह हालत मालूम पड़ने पर उसे उन्होंने अपने सामने बैठाकर खाना खिलाना शुरू किया। उस समय वह कैसा दीन मुँह बनाता, कैसे बहाने करता तथा कैसी चालाकिया करता कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अक्सर वह लोटे में दूध चुराकर ले जाता या पानी मिलाकर थोड़ा दूध अफ़सर के सामने पी लेता और बाकी चुराकर ले जाता या कहता, 'साहब, अब मेरा पेट भर गया'। इस बहाने से वह या तो चावल बचा लेता या आधी रोटियां, फिर उन्हें कुंडे में फेंकने के बहाने ले जाता और बेच देता।

इस प्रकार उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। उसकी मति भ्रष्ट होगई थी। उसका चित्त सिर्फ बीड़ियों और रोटियों की तरफ रहा करता था। वह भूखा रहता था, अस्तु दूसरों के बचे हुए टुकड़े खाता या साधारण कैदियों की पंक्ति में बैठकर रोटी मांगता। उस समय उसकी घर्राती हुई, खोखली तथा दीन आवाज़ गूंज उठती, 'अरे मुझे भूखों क्यों मारते हो रे? मुझे रोटी दो, रोटी! अस्पताल की खुराक में मेरा पेट नहीं भरता।'

कभी २ उसे रोटी दे दी जाती मगर डाक्टर की आज्ञा न होने के कारण उसे साधारण खाना अक्सर नहीं दिया जाता था। तब वह ऐसा शोर मचाता, ऐसा चिल्लाता और ऐसा रोता मानों कोई उसे हलाल ही कर रहा हो।

अस्पताल की खुराक बेचने में इतनी बाधायें आजाने के कारण बाला टट्टी में जाकर पेशाब और आबदस्त से भीगे हुए बीड़ी के टुकड़े उठाने लगा। वह उन टुकड़ों को अपने कुर्ते में पोंछ लेता, फिर पीता या यदि टुकड़ा बहुत गीला हुआ तो उसका पत्ता फेंक देता और तम्बाकू को चिलम में भरकर पीता। इतना ही नहीं जो कोई कैदी तम्बाकू खाता था वह जब उसे एक स्थान पर थूक देता तो बाला धीरे २ वहां जाता

थोड़ी देर गिड़गिड़ाने के बाद बाला ने अपने सेब भी उसके हवाले कर दिये—सिर्फ एक बीड़ी के लिये।

उस दिन बाला का पेट नहीं भरा। इसके दो कारण थे। पहला तो यह था कि खाद्य पदार्थ बिलकुल कम रह गया था—सिर्फ छः पूरियां। दूसरा यह था कि दूसरों को लड्डू खाते देखकर उसकी तृष्णा और भूख चौगुनी हो उठी थी। वह चुपचाप दीन और क्षुधित नेत्रों से दूसरों को हँस हँसकर लड्डू खाते हुए देखता रहा।

एक दिन बाला बीमार पड़ गया। वह बहुत सख्त बीमार हो गया। अस्पताल में वह कुछ दिनों तक रक्खा गया मगर बाद में वहां से निकाल दिया गया। उस समय उसकी सूरत बड़ी ही रोमांचकारी थी। वह हड्डियों का ढांचा होगया था। उसकी खाल लटक गई थी। पैरों के तलुओं में बड़े बड़े दर्रे फट गये थे जिनसे लोहू टपकता था। सारे बदन में चाम जूँ होगई थीं तथा उसकी चमड़ी में मैल और मरी हुई चमड़ी के संयोग से एक मोटी काली तह जम गई थी जिसे देखकर सुअर की पीठ की याद आती थी। उसका चेहरा भयंकर, दयनीय, घृणित, तथा अद्भुत होगया था। उसके बड़े बड़े मैले दांत पागल कुत्ते की तरह बाहर निकले रहते, उसके भद्दे मोटे होंठ नीचे को लटके रहते थे। उसके चेहरे में झुर्रियां पड़ गईं थीं मगर उसकी बड़ी बड़ी, गड्ढे में धँसी हुई आंखों से एक अजीब चमक निकला करती थी। उस चमक में अनन्त क्षुधा, पिपासा और दैन्य भाव था। वह हर किसी की ओर उन कांच की सी आंखों से देखा करता। फिर वह खोखली परन्तु गहरी आवाज से बोलता, "एक बीड़ी दे दो भाई!"

वह बिलकुल प्रेत-मूर्ति सा प्रतीत होता था। कोई उसके साथ सहानुभूति न करता, कोई उसे अपने पास न बैठने देता। अब वह शिकस्त हो गया था। बीड़ी-टुकड़ा-क्षेत्र में दौड़ने की उसमें सामर्थ्य न थी। उसे टुकड़ा भी मिलना दूभर होगया था।

उसे अस्पताल से विशेष खुराक (दूध, गेहूँ की रोटी, गोश्त,

चावल इत्यादि) खाने को मिलता था, लेकिन वह एक बीड़ी के लिये अपना दूध बेच देता, और अपने जीवन तथा स्वास्थ्य की चिन्ता न करता। इस प्रकार वह दिनों-दिन घुलता गया। अफसरों को उसकी यह हालत मालूम पड़ने पर उसे उन्होंने अपने सामने बैठाकर खाना खिलाना शुरू किया। उस समय वह कैसा दीन मुँह बनाता, कैसे बहाने करता तथा कैसी चालाकियां करता कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अक्सर वह लोटे में दूध चुराकर ले जाता या पानी मिलाकर थोड़ा दूध अफसर के सामने पी लेता और बाकी चुराकर ले जाता या कहता, 'साहब, अब मेरा पेट भर गया'। इस बहाने से वह या तो चावल बचा लेता या आधी रोटियां, फिर उन्हें कुंडे में फेंकने के बहाने ले जाता और बेच देता।

इस प्रकार उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। उसकी मति भ्रष्ट होगई थी। उसका चित्त सिर्फ बीड़ियों और रोटियों की तरफ रहा करता था। वह भूखा रहता था, अस्तु दूसरों के बचे हुए टुकड़े खाता या साधारण कैदियों की पंक्ति में बैठकर रोटी मांगता। उस समय उसकी घर्राती हुई, खोखली तथा दीन आवाज़ गूंज उठती, 'अरे मुझे भूखों क्यों मारते हो रे? मुझे रोटी दो, रोटी! अस्पताल की खुराक में मेरा पेट नहीं भरता।'

कभी २ उसे रोटी दे दी जाती मगर डाक्टर की आज्ञा न होने के कारण उसे साधारण खाना अक्सर नहीं दिया जाता था। तब वह ऐसा शोर मचाता, ऐसा चिल्लाता और ऐसा रोता मानों कोई उसे हलाल ही कर रहा हो।

अस्पताल की खुराक बेचने में इतनी बाधायें आजाने के कारण बाला टट्टी में जाकर पेशाब और आबदस्त से भीगे हुए बीड़ी के टुकड़े उठाने लगा। वह उन टुकड़ों को अपने कुर्ते में पोंछ लेता, फिर पीता या यदि टुकड़ा बहुत गीला हुआ तो उसका पत्ता फेंक देता और तम्बाकू को चिलम में भरकर पीता। इतना ही नहीं जो कोई कैदी तम्बाकू खाता था वह जब उसे एक स्थान पर थूक देता तो बाला धीरे २ वहां जाता

और उन थूकी हुई तम्बाकू को उठाकर खाजाता था *।

आखिर एक दिन आया जब बाला अपने बिस्तर से नहीं उठ सका। उस दिन शारीरिक पीड़ाओं के साथ उसे सबसे बड़ी मानसिक पीड़ा यह रही कि बीड़ी पीने को नहीं मिली। वह दिन भर बिस्तर पर पड़ा २ कराहाता रहा, 'अरे एक टुकड़ा बीड़ी दे दो भाई।' मगर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। सच पूछो तो सभी को उससे घृणा होगई थी। यहां तक कि शिकारी लोग भी उसकी करतूतों से थकित और चकित होकर शायद उससे ईर्षा करने लगे थे, क्योंकि वह टुकड़ों के विषय में बाजी मार गया था। उन्हें एक प्रकार से बाला की अशक्तता से हर्ष ही हुआ था क्योंकि टुकड़ा-होड़ में वह उनका सब से बड़ा प्रतिद्वन्दी था जो आज भीष्म की तरह परास्त पड़ा था।

बस बाला उस रात को बारह बजे चल बसा। सबेरे जब उसकी लाश बाहर रखी गई तो लेखक उसे देखने गया। उसके दांत बाहर को निकले हुए थे, आंखे कांच की तरह चमक रही थीं। लेखक को ऐसा मालूम पड़ा मानों वह अब भी बीड़ी मांग रहा है। मन में विचार आया, हो न हो चार-छः बीड़ियां उसके कफ़न में रख दूं और एक बीड़ी जला-कर उसके खुले मुंह में खोंस दूं मगर........।

---

* यह घटना कल्पित नहीं है।

बदला

"भोली भाली शक्ल वाले होते हैं जल्लाद भी।" मुँह फैलाकर, हाथ नचाकर और चेहरे पर मजनूपन लाने का भरपूर प्रयत्न करते हुए जेल का गुँडा नं० १ गारहा था। कई श्रोता बड़े आनन्द से उस गाने को सुन रहे थे और रह रहकर पास ही दीवार के सहारे बैठे हुए एक २०-२२ वर्ष के युवक की ओर तिरछी तथा रहस्य-भरी मुस्कराहट-पूर्ण दृष्टि से देखते जाते थे। कहना न होगा कि गाना उसी को लक्ष्य करके, उसी को सुनाने के लिये तथा उसी को बनाने के लिये एक गन्दे तीर की तरह छोड़ा जारहा था। वह युवक या लड़का या क़ैदियों की भाषा में लौंडा कुछ गोरा, आकर्षक और लजीला था। परिश्रम से थका हुआ, उदास, और पीड़ित सा वह हाथ-पांव ढीले किये हुए दीवार के सहारे बैठा हुआ शून्य दृष्टि से देख रहा था। उसकी आकृति से जान पड़ता था कि उसका लक्ष्य गाने की ओर न होकर कहीं दूर—बहुत दूर देश में है।

एक गाना समाप्त होने के साथ ही क़ैदियों के उद्गार उस नीरस और सुनसान वायुमंडल को चीरते हुए किसी बर्तन की ठनठनाहट की भांति गूँज उठे :—

"आय हाय!"

"हाय रे!"

"मार डालो!"

उस गाने के समाप्त होते ही दूसरा गाना छिड़ गया :—

"निगाहे नाज़ ज़रा मुझ पै डालते जाना।
मुझ ग़रीब की हसरत निकालते जाना॥"

शायद यह गाना उस लड़के की उदासीनता को देखकर ही प्रेम-प्रार्थना के स्वरूप में प्रारम्भ किया गया था। इस गाने की ध्वनि में सभी श्रोता झूम झूमकर और तिरछी नज़र से उस लड़के की ओर देख देखकर, अपने हृदय की प्रणय-याचना भर रहे थे। वे उस गीत के स्वर के प्रत्येक उतार-चढ़ाव पर और प्रत्येक लहर पर अपने अपने हृदयों में चिल्ला चिल्लाकर कह रहे थे:—

"मुझ पर निगाह डालो! मुझ पर!"
"अरे मेरी हसरत निकालो, मेरी!"
"अरे ज़रा इधर देखो सही!"
"ओह!"

लड़के का ध्यान अब भी इन लोगों के गाने की ओर न था। गाना कभी का ख़त्म होचुका था। देवता को बिलकुल पत्थर—सन्गे दिल—देख कर, जिस प्रकार प्रार्थना के साथ साथ दमादम, भड़ाभड़, झनाझन इत्यादि भैरव बाजे भी उसके द्वार पर उसे रिझाने के लिये बजाये जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग अपने मौखिक बाजे बजाने लगे:—

"हाय रे ज़ालिम!"
"अरे ज़रा इधर तो देखो!"
"उफ़्"
"हा हा हा हा!"
"हू हू!"
"अहम्!"

लड़के का ध्यान इस शोर की ओर आकर्षित हुआ। आख़िर देवता के द्वार पर इतना कोलाहल और भड़ाभड़ करने की हिन्दू-प्रथा में कुछ वैज्ञानिक सत्य छिपा हुआ है यह बात स्पष्ट होगई। लड़के ने न तो उनका गाना सुना था और न फ़ब्तियां परन्तु उसे सहसा कुछ ऐसा

हो दो-तीन हाथ के फ़ासले पर पड़ रहा और उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखता हुआ बोला, "क्यों भाई, एक बात कहूँ ?"

'क्या ?' लड़का उसकी आंखों की चमक देखकर सकपका गया। उसने देखा कि दूर पर कैदी लेटे हुए थे, कुछ सो रहे थे और कुछ अपनी अपनी बातों में लगे हुए थे। 'क्या' के जवाब में नं० १ उसके बिलकुल पास खिसककर लेट गया और उसकी आंखों से आंखें मिलाकर हँसने लगा। लड़का शर्म से लाल होगया। उसकी इच्छा उठने की हुई मगर नं० १ ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "पड़े रहो, पड़े रहो।" वह नहीं उठ सका।

"कहूँ !" नं० १ ने पूछा।

"हां कहो," लड़के ने गला साफ करते हुए कहा।

उत्तर में नं० १ ने चट से एक चुम्बन ले लिया। लड़का तड़पकर उठ बैठा। मनुष्य का चरित्र भी क्या अद्भुत वस्तु है। कभी कभी वह शंका करते हुए भी और जानते हुए भी किसी खतरे या परिस्थिति विशेष की ओर जाता है और जब वह खतरा एकदम सामने आकर खड़ा हो जाता है तो वह तुरन्त पीछे भागने का प्रयत्न करता है। उसे अपने ऊपर क्रोध न आकर उस खतरे पर क्रोध आता है कि उसका बुरा हो, ऐसा क्यों हुआ।

शिकार को बिचकते देखकर होशियार बहेलिये ने कहा, "वाह, वाह, ऐसा क्या नाराज होते हो ? इसमें क्या हुआ ? यह तो मुहब्बत की निशानी है। यह कोई बुरी बात थोड़े ही है ?"

लड़का कम्पित ओठों और लाल नेत्रों से उसकी ओर देखता रहा। उसकी उम्र २०-२२ साल की होगी। उसके होटों पर मूछें निकल रही थीं, गालों पर दाढ़ी उग रही थी, परन्तु इस पर भी उसकी आंखों और चेहरे पर लड़कपन की माधुर्यता खेलती रहती थी। जो हो वह अपने को नौजवान समझता था। उसने इस हरकत से अपना अपमान समझा। वह बेबशी, मजबूरी, विपत्ति और एकान्त के कारण जिस मार्ग पर शंका

करता हुआ जानबूझकर जा रहा था वहीं लड़का उसके सामने एकदम आकर खड़ी हो गई। उसके नग्न स्वरूप से वह घबड़ा गया उसने वहां से हटते हुए कांपती हुई आवाज़ में कहा, "खबरदार जो, अब कभी मेरे पास आया !"

"हां ?" हास्य और अहंकार से मुंह फाड़ते हुए नं० १ ने कहा।

लड़का कुछ उत्तर न देकर चला गया। उसका हृदय ग्लानि और अपमान से जल रहा था। सच कहा जाय तो उसके अन्दर मरती हुई मर्दानगी या मनुष्यत्व एक बार फिर से प्रज्वलित हो उठा था मगर…………

"अच्छा बेटा, मेरा नाम ....है ! याद रखना !" लड़के ने पीठ पर चलाये गये तमंचे के प्रहार की भांति यह वाक्य जाते जाते सुना।

दूसरे ही दिन उसे इस वाक्य की सत्यता मालूम पड़ने लगी। उससे नम्बरदार लोग सख्त और पूरा काम लेने लगे। उसे बात बात गालियां दे देकर जेल-कानूनों की याद दिलाने लगे। नं० १ के कहने से (दो पैसे की बीड़ियां रोज़ देने से) जो कैदी उस लड़के के हिस्से का काम रोज़ कर दिया करता था, उसने भी काम में मदद करने से इन्कार कर दिया। खाने के समय नं० १ की बीड़ियों के प्रभाव से जो अच्छी अच्छी रोटियां काफ़ी तादाद में लंगरवाले (रसोई वाले) दे जाते थे वे भी बन्द हो गईं। मिठाई के तो दर्शन ही दुर्लभ हो गये। उसी के प्रताप से उसे जो फालतू कपड़े और बढ़िया कम्बल वगैरह मिले थे वे भी छिन गये और उनके स्थान पर रद्दी कपड़े और कम्बल मिले। काम पूरा न होने पर गालियां और मार पड़ने लगी और चक्की में भेजे जाने की तैयारी होने लगी। वह फिर अकेला, निराधार और विपत्ति-ग्रस्त हो गया। नं० १ की की हुई एक एक सहायतायें उसे याद आने लगीं—उसी ने उसे चक्की से बचाया था, उसी ने आज तक उसे काम में मदद की थी, वही खाने, पीने, कपड़े इत्यादि प्रत्येक बात में उसकी सहायता करता आरहा था। उसके बिना जेल कितनी भयंकर हो उठी थी। पहले कितनी

आसान थी जेल, अब कितनी कठोर हो गई। फिर भी हद नहीं थी। नं० १ षड़यन्त्र करके उसे कई प्रकार की मुसीबतों में फंसा सकता था। उसने इनकी धमकी भी दी। इसके सिवाय उसने देखा कि जेल के गुंडों के नियम के अनुसार उसकी कोई मदद नहीं करता था। जो लोग भले आदमी थे वे कहते, 'भाई कौन इस झगड़े में पड़े। यह लौंडों का मामला ठहरा। कल के लिये हमारी भी बदनामी होने लगे। फिर यह बड़े बड़े कैदियों का मामला है। कोई अपने ही ऊपर हमला कर बैठे तो।' इस प्रकार भले आदमी या तो उदासीन थे या कछुए की तरह अपने हाथ-पांव सिकोड़े हुए बैठे थे। प्रायः बदमाश कैदी इच्छा रहते हुए भी उसकी मदद नहीं करते थे क्योंकि पहले तो वे आपसी झगड़े को डरते थे, फिर उन्हें यह भी भय था कि कल उनके लौंडे को कोई दूसरा बहकाने लगेगा। इससे उन्होंने अलग रहना ठीक समझा।

अभागा लड़का ऐसी विपत्ति में फँस गया। वह अफ़सरों से भी क्या शिकायत करता, और अफ़सर भी क्या करते। वे सब इन बातों को जानते थे, अतः प्रायः टालते रहते थे क्योंकि ऐसी बातों में हाथ डालकर उन्होंने देख लिया था कि कैदी लोग हिन्सक पशु हो उठते थे। लड़का चारों ओर खाई, कांटों, पशुओं और दलदल से घिरा हुआ था। इसके सिवाय वह रोज़ देखता था कि उसी सरीखे अन्य लड़के उससे भी अधिक उम्र वाले यहां तक कि दो-एक बूढ़े आदमी तक दूसरों के लौंडे बने हुए बैठे थे। उन्हें सबके सामने चुम्बन कराने तक में लज्जा नहीं आती थी। वे लोग उसके सामने आराम से पड़े रहते, उम्दा माल उड़ाते और कोई काम नहीं करते थे। कुछ दुवारों के बारे में उसने सुना था कि वे लोग बार बार इसी लिये जेल में आते थे कि बाहर दुनिया में उनकी क़द्र नहीं होती मगर जेल में वे बड़े मज़े में रहते हैं। इस प्रकार का वायुमंडल उसे घेरे हुए था, जो उसको दबाता, पीसता और पांव पकड़कर दलदल की ओर बरबस घसीट रहा था। आखिर उसने सोचा कि ऐसे कहां तक कटेगा, दो साल कैसे बीतेंगे, उसे मौत सम्मुख दिखाई

पड़ रही थी।

उस दुनिया में उसने देखा कि एक पार्टी पाप करने वाली है और दूसरी करवाने वाली है। इनके सिवाय तीसरी पार्टी भी तो है— तीसरी पार्टी यदि कोई है तो वह दर्शक पार्टी है जो इस पाप-कर्म के विरुद्ध न होकर उसकी सफलता और असफलता पर तालियाँ पीटती और हर्ष प्रकट करती है। सच पूछो तो ये लोग थे जिनमें पाप करने की भावना तो थी मगर उसमें हाथ डालने, सफलता प्राप्त करने इत्यादि का कौशल और साहस न था। तात्पर्य यह है कि जिस पाप में वह लड़का शामिल रहा था, उसे घृणित और लज्जाजनक कहने वाला वहाँ कोई भी जोरदार मत या दल नहीं था। 'फिर लज्जा कैसी?' यह वाक्य उसके मन में गूँजने लगा मगर पूर्व संस्कारों और नं० १ की की गई हत्या की निर्दयता के कारण उसके मन में हिचकिचाहट चल रही थी कि इसी समय......

क्या उपमा दी जाय? गज-ग्राह की उपमा तो बिलकुल नहीं जमती। खैर! गुंडा नं० ३ ने आकर चुपके से अपना हाथ बढ़ा दिया परन्तु साफ शब्दों में उसने कह दिया—क्योंकि वह अधिक होशियार व्यापारी था—"देखो जी, मैं अपनी जान तुम्हारे लिये खतरे में डालता हूँ तो मैं कोई उल्लू नहीं हूँ, समझे! जैसा उसे उल्लू बनाया वैसा अगर मुझे भी बनाना हो तो पहले से कह दो! मेरे कब्जे में आते हो तो पूरे आओ। जो मैं कहूँगा करना पड़ेगा वरना मिट्टी पलीत कराओ।"

[२]

लोग कहते हैं कि क्रान्ति होने के बाद किसी देश की अवस्था बिलकुल बदल जाती है। आज का रूस देखने से कोई यह नहीं कह सकता कि यह वही रूस है। उस लड़के में इससे भी अधिक क्रान्ति उपस्थित हुई। चाहे कोई रामचन्द्र जी को कोट, पैन्ट और हैट पहने हुए देखकर भी पहिचान ले, चाहे हनूमान जी को देसी साहब के रूप में सिगरेट पीते हुए और रेस्टोरेन्ट में बैठे हुए देखकर भी पहिचाना जा सके मगर उस लज्जाशील, भीरु और नम्र लड़के को नं० ३ के कब्जे में जाने के

आसान थी जेल, अब कितनी कठोर हो गई। फिर भी हद नहीं थी। नं० १ षडयन्त्र करके उसे कई प्रकार की मुसीबतों में फंसा सकता था। उसने इसकी धमकी भी दी। इसके सिवाय उसने देखा कि जेल के गुंडों के नियम के अनुसार उसकी कोई मदद नहीं करता था। जो लोग भले आदमी थे वे कहते, 'भाई कौन इस झगड़े में पड़े। यह लौंडों का मामला ठहरा। कल के लिये हमारी भी बदनामी होने लगे। फिर यह बड़े बड़े कैदियों का मामला है। कोई अपने ही ऊपर हमला कर बैठे तो।' इस प्रकार भले आदमी या तो उदासीन थे या कछुए की तरह अपने हाथ-पांव सिकोड़े हुए बैठे थे। प्रायः बदमाश कैदी इच्छा रहते हुए भी उसकी मदद नहीं करते थे क्योंकि पहले तो वे आपसी झगड़े को डरते थे, फिर उन्हें यह भी भय था कि कल उनके लौंडे को कोई दूसरा बहकाने लगेगा। इससे उन्होंने अलग रहना ठीक समझा।

अभागा लड़का ऐसी विपत्ति में फँस गया। वह अफसरों से भी क्या शिकायत करता, और अफसर भी क्या करते। वे सब इन बातों को जानते थे, अतः प्रायः टालते रहते थे क्योंकि ऐसी बातों में हाथ डालकर उन्होंने देख लिया था कि कैदी लोग हिन्सक पशु हो उठते थे। लड़का चारों ओर खाई, कांटों, पशुओं और दलदल से घिरा हुआ था। इसके सिवाय वह रोज़ देखता था कि उसी सरीखे अन्य लड़के उससे भी अधिक उम्र वाले यहां तक कि दो-एक बूढ़े आदमी तक दूसरों के लौंडे बने हुए बैठे थे। उन्हें सबके सामने चुम्बन कराने तक में लज्जा नहीं आती थी। वे लोग उसके सामने आराम से पड़े रहते, उम्दा माल उड़ाते और कोई काम नहीं करते थे। कुछ दुबारों के बारे में उसने सुना था कि वे लोग बार बार इसी लिये जेल में आते थे कि बाहर दुनिया में उनकी कद्र नहीं होती मगर जेल में वे बड़े मज़े में रहते हैं। इस प्रकार का वायुमंडल उसे घेरे हुए था, जो उसको दबाता, पीसता और पांव पकड़कर दलदल की ओर बरबस घसीट रहा था। आखिर उसने सोचा कि ऐसे कहां तक कटेगा, दो साल कैसे बीतेंगे, उसे मौत सम्मुख दिखाई

पड़ रही थी।

उस दुनिया में उसने देखा कि एक पार्टी पाप करने वाली है और दूसरी करवाने वाली है। इनके सिवाय तीसरी पार्टी भी नहीं है। तीसरी पार्टी यदि कोई है तो वह दर्शक पार्टी है जो इस पाप-कर्म के देवता न होकर उसकी सफलता और असफलता पर तालियाँ पीटती और हर्ष प्रकट करती है। सच पूछो तो ये लोग वे थे जिनमें पाप करने की भावना तो थी मगर उसमें हाथ डालने, सफलता प्राप्त करने इत्यादि का कौशल और साहस न था। तात्पर्य यह है कि जिस बात से वह लड़का शरमा रहा था, उसे घृणित और लज्जाजनक कहने वाला वहाँ कोई भी ढूँढ़ने पर भी या दूस नहीं था। 'फिर लज्जा कैसी?' यह वाक्य उसके मन में गूँजने लगा मगर पूर्व संस्कारों और नं० २ की की गई हालत की निर्दयता के कारण उसके मन में हिचकिचाहट चल रही थी कि इसी समय......

क्या उपमा दी जाय? मन-प्राण की उपमा से बिलकुल नहीं जमती। खैर! गुंडा नं० ३ ने आकर चुपके से अपना हाथ बढ़ा दिया परन्तु साफ शब्दों ने उससे कह दिया—क्योंकि वह अधिक होशियार व्यापारी था—"देखो जी, मैं अपनी जान तुम्हारे लिये खतरे में डालता हूँ तो मैं कोई उल्लू नहीं हूँ, समझे! जैसा उसे उल्लू बनाया ऐसा अगर मुझे भी बनाना हो तो पहले से कह दो! मेरे कब्जे में आते हो तो पूरे आओ। जो मैं कहूँगा करना पड़ेगा वरना मिट्टी पलीत कराऊं।"

[३]

लोग कहते हैं कि क्रान्ति होने के बाद किसी देश की अवस्था बिलकुल बदल जाती है। आज का रूस देखने से कोई यह नहीं कह सकता कि यह वही रूस है। उस लड़के में इससे भी अधिक क्रान्ति उपस्थित हुई। चाहे कोई रामचन्द्र जी को कोट, पैन्ट और हैट पहने हुए देखकर भी पहिचान ले, चाहे हनुमान जी को देसी साहब के रूप में सिगरेट पीते हुए और रेस्टोरेन्ट में बैठे हुए देखकर भी पहिचाना जा सके मगर उस लज्जाशील, भीरु और नम्र लड़के को नं० २ के कब्जे में जाने के

बाद पहचानना कठिन था। वह गर्दन उठाकर, सीना निकालकर, हँसता हुआ चला करता था। उसके चेहरे पर बेशर्मी, उद्दंडता, अशिष्टता इत्यादि की क्रीड़ा होती रहती थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह अन्तस्तल में होने वाले द्वन्द्व और उसके प्रभाव को इन ऊपरी ढक्कनों से ढककर दबा देना चाहता था। अन्तरात्मा की आवाज को मारने के लिये ही वह अधिक बकवास करता, गाना गाता, हल्ला मचाता, बातचीत करता, हँसता, और हँसी-मज़ाक करता था। वह अपनी लज्जा को ढकने के लिये अधिक लापरवाह या फक्कड़ दिखने की कोशिश करता और प्रायः लोगों से शान बघारता और लड़ पड़ता था। उसकी भाषा अश्लील और गालियों से भरी होती थी और वह लम्बी-चौड़ी व्यर्थ की बातें हांका करता था:—"अजी हम किसी के दब्बैल हैं क्या? ऐसे पच्चीसों देख लिये हैं। मैं क्या किसी की परवाह करता हूं? चलो जी! हटो उधर!" वह शान से गर्दन हिलाकर ऐसी बातें किया करता था।

नं० ३ अन्दर ही अन्दर खूब चौकन्ना परन्तु ऊपर से वही गुंडा-रूप—लापरवाह, ढीठ, निडर, बेशर्म, और खुश दिल—रहा करता तथा लड़के के पीछे छाया की भांति रहा करता था जिस प्रकार कुत्ता किसी कुतिया के पीछे फिरा करता है। उसे नं० १ का भय था कि कहीं वह उसे फिर से भड़का न ले जाय। लड़के को यह भय था कि नं० १ कहीं उसके ऊपर चोट न कर बैठे। उसने कांपते कांपते नं० ३ से कई बार कहा था, "मुझे उसका बड़ा डर लगता है। कभी वह मेरे ऊपर हमला न कर बैठे।"

नं० ३ ने एक सरदार की तरह शान से छाती फुलाकर उसे आश्वासन दिया था, "तुम मत घबराओ। किसी साले की क्या मजाल कि तुम्हारा बाल भी बांका कर सके। मैं साले का खून पीजाऊँ!"

नं० १ दूर से ज्वलन्त नेत्रों से ये सारी बातें देखा करता था। वह नं० ३ से शारीरिक बल में कम था। नं० ३ एक काला, कलूटा, ऊंचा और तगड़ा जवान था जिसे जन्म-कैद की सज़ा हुई थी। नं० १

बिलकुल इकहरे बदन का, गोरा और छोटा सा आदमी था। वह जानता था कि द्वन्द युद्ध में वह नं० ३ के सामने नहीं ठहर सकता। उसकी इस शारीरिक दुर्बलता के कारण ही नं० ३ ने गुँडा-दल के नियम भंग करने का साहस किया था। नं० १ ने पहले गुँडा-समिति में इसकी अपील की, "देखो भाई, यह बात अच्छी नहीं है। उसने हमारे लौंडे को बहका लिया है। हम कहे देते हैं इसका नतीजा अच्छा न होगा।"

लोगों ने उसके साथ सहानुभूति दिखाते हुए कहा—यद्यपि अन्दर ही अन्दर वे सब खुश थे, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा था कि दूसरे का नुकसान देखकर उन्हें हार्दिक आनन्द होता था—"हां भाई, यह तो बुरी बात है। यह तो दोगलापन है, कमीनापन। ऐसा उसे नहीं चाहिये। देखो हम उसे समझायेंगे।" और समझाने के बहाने उन्होंने नं० ३ से जाकर हर्ष और आनन्द से आंखें मिचकाते हुए कहा, "खूब जमाया हाथ यार! अच्छा मारा। अब साला रोता फिरता है, कहता है कि भाई मामला निपटा दो। हमने कहा हमारी क्या अटकी पड़ी है।"

"लेकिन यार ज़रा सम्हले रहना। हां, आदमी घुन्ना है। साला पीठ में मारता है।"

"उँह उसकी मां......(गाली)......मेरी तरफ़ आंख उठाकर देखा कि मैंने साले की आंखें निकाल लीं," नं० ३ ने सीना तानकर और शान के साथ गर्दन को झोंका देकर कहा।

बेचारा नं० १ मन ही मन कुढ़ता हुआ अकेला रह गया। गुँडा-समिति ने उसकी कोई मदद न की। लड़के के हावभाव, हँसना, बातचीत, ढिठाई, बेशर्मी, उसका नं० ३ से लिपटे फिरना इत्यादि देख देखकर उसकी छाती में सांप लोटने लगे। वह दांत पीसकर कहता, "देखो साले हिजड़े को। इसे जरा भी शर्मो-हया नहीं है। और मेरे से कैसा पतिव्रता बनता था।"

लोग उसकी हां में हां मिलाते हुए कहते, "अजी वह पूरा हिजड़ा है। हमें मालूम है साला नौटंकी में काम करता रहा है।"

"अरे मैंने उसे दाढ़ी सानी बनते हुए खुद देखा है। बदमाश है साला।"

"वह तो तुम्हें बना रहा था यार! साला पूरा छटा हुआ है।"

"खूब ठगा तुमको तो साले ने! ह ह ह ह!"

इस प्रकार वे उनकी आग को और भी अधिक भड़का देते थे। वे चाहते थे कि मामला ठंडा न होकर और भड़के और कोई भयंकर घटना में समाप्त हो जिससे कुछ नशा तो आये, जेल की नीरसता तो भंग हो। ये वे लोग थे जिन्हें ऐसे कामों की प्रबल इच्छा तो थी मगर उनमें इतना कौशल और साहस न था कि वे किसी लौंडे को हथिया सकते। अस्तु वे उन गुंडों से ईर्षा करते थे, उन लौंडों से जलते थे जो इन कामों में सफल रहते थे। वे दूसरों के सामने उनकी बुराई करके, उन्हें गालियां देकर अपने हृदय की झुँझलाहट और डाह को शान्त करने की कोशिश किया करते थे। वे आपस में गुंडों को लड़ा देते, उन्हें उत्तेजित करते और कभी एक पक्ष को बढ़ाते तो कभी दूसरे का साथ देते। इस प्रकार उस वायुमण्डल को क्षुब्ध रखने का सतत प्रयत्न करते थे। वे लोग उस कहावत को चरितार्थ करते थे कि 'खा नहीं पावेंगे तो ढुलका जरूर देंगे।' ये लोग ढुलकाकर आग भी लगा देते थे। इस प्रकार दिन कट रहे थे।

नं० १ को चुप परन्तु भीतर ही भीतर जलते देखकर उस लडके की हिम्मत भी कुछ अधिक बढ़ गई। उसने देखा कि छत्त के नीचे खड़े होने से बरें नहीं काटती हैं तो उसने उन्हें लकड़ी से छेड़ना भी शुरू कर दिया। वह नं० १ को दिखा दिखाकर खूब हँसता, खूब बातें मारता, बालों में तेल डालता, अपने कान का इतर दूसरों को सुँघाता, गाना गाता और शेखी बघारता था। यह सब कुछ नं० १ को असह्य हो रहा था। वे तीनों (नं० १, नं० ३ और वह लड़का) एक ही स्थान पर काम करते थे। दिन भर बेचारा नं० १ जला करता था। पहले तो उसने उदासीनता धारण कर ली मानों उसे कुछ ताल्लुक ही नहीं था। परन्तु

बाद में एक घटना हो गई।

दैवयोग से नं० ३ और उस लड़के का बिस्तर उसी कोठे में आगया जिसमें नं० १ रहता था। अब तो दिन-रात नं० १ की छाती में कोदों दले जाने लगे। हास्य-परिहास, आलिंगन, सहभोज, संगीत, और व्यंगोक्तियां ये ऐसे अमोघ अस्त्र हैं कि जो किसी भी व्यक्त-प्रेमी को नारकीय पीड़ा पहुँचा सकते हैं। नं० १ तो भाड़ में भुनने लगा। इतना ही नहीं, उसकी शान्ति और नकली उदासीनता से ऊबकर लोगों ने उसे फटकारा :—

"हुष्ट, हुं, हत्तेरे की! बिलकुल ही नामर्द निकला!"

"अरे देखते क्या हो? चढ़ बैठो साले के ऊपर!"

नं० १ कुछ न बोला। वह स्वयं मन ही मन कोई योजना बना रहा था। लोग बड़े निराश हुए। 'च् च् डर गया साला' इस प्रकार पश्चाताप करते हुए वे चले गये और दूसरे पक्ष को खुशखबरी सुनाई, "साले ने हग दिया है भइया! उसकी नहीं है दम कुछ करने की! हां!"

नं० ३ ने विजय-आनन्द से अट्टहास करके उत्तर दिया, "वह क्या खाकर सर उठायेगा? उसकी दम ही क्या है मेरे सामने!"

इस प्रकार की बातों का परिणाम यह हुआ कि नं० १ तो मन ही मन मौके की ताक में रहने लगा और नं० ३ लापरवाह, निडर और अधिक मुँहफट होगया। उसके दिल में खुजली सी चलने लगी। वह जानबूझकर नं० १ को छेड़ने लगा। कभी उसे जाते देखकर आवाज़ मारता, 'पटल तेरा ध्यान किधर है?' चरस की चिलम ताज़ी करता तो पीने के पहले जोर से चिल्लाता, 'बम शंकर, कांटा लगे न कंकर, दुश्मन को तंग कर।'

ये सब फब्तियां अस्पष्ट होती थीं। नं० १ इनका बहाना लेकर नहीं लड़ सकता था क्योंकि ये किसको सम्बोधन करके कही जाती थीं यह सिद्ध करना कठिन था। अस्तु वह चुप रहता और कुछ न बोलता था, परन्तु उसका हृदय जलती हुई कटुता से भरता चला जारहा था।

एक दिन रात को नं० ३ ने जबरदस्ती झगड़ा खड़ा कर दिया। कारण यह था कि नं० १ ने एक आदमी का बिस्तर अपने पास से हटवा दिया था क्योंकि वह खांसता बहुत था। नं० ३ उसका पक्ष लेकर खड़ा होगया और बोला, "नहीं, उसका बिस्तर यहीं लगेगा। देखें कौन साला मना करता है?" इतना कहकर उसने अपने हाथों से उसका बिस्तर उसके पास लगा दिया।

'साला' शब्द नं० १ को खटक गया। उसने भी कड़ककर कहा, "देखो जी, जबान सम्हाल कर बात करना! साला किसको कहते हो?"

"तुमको!" दन से उत्तर मिला और उत्तर देने वाला तनकर खड़ा होगया।

"खबरदार अगर साला कहा........" कमजोर आदमी ने चेतावनी देने ही में बात टालनी चाही।

"तेरी तो मां (गाली) साले क्या कर लेगा तू?" दर्जनों गालियां मशीनगन की वर्षा की भांति देता हुआ, बांहें सिकोड़ता हुआ नं० ३ उसके बिस्तर पर जा धमका।

झगड़ा हो ही जाता मगर सरकार ने क़ैदी-अफसर फिजूल ही नहीं बनाये। उन्होंने बीच में पड़कर नं० ३ को उसकी जगह पर बैठाया और दोनों को समझा बुझाकर शान्त करने की कोशिश की। नं० १ सांप की तरह फुफकार छोड़ता हुआ और अपनी आंखों की अग्नि से दुश्मन को जलाता हुआ चुपचाप बैठा रहा, मगर नं० ३ अपने बिस्तर पर बैठा बैठा लगातार उसे गालियां, और धमकियां दे रहा था, "साले हिजड़े, तू क्या बोलता है मुझसे? तू क्या खाकर बोलेगा? पहिले मुँह धो आ। कमीने!........" नं० ३ को कई कारणों से जोश अधिक आरहा था। एक कारण तो नं० १ का दब्बूपन और शारीरिक कमी था। दूसरा कारण लोगों का उत्तेजन था; और तीसरा खास कारण उस लड़के की उपस्थिति थी। वह उसे दिखा देना चाहता था कि वह कितना बड़ा वीर है। उसके दुश्मन को कैसा मारता है। उसके लिये वह कितना बलिदान

करता है और साथ ही साथ वह देख ले कि उसका पुराना यार कितना निकम्मा है। इस प्रकार के अद्भुत जोश से नं० ३ मतवाला होरहा था।

यही हाल नं० १ का भी था। वह सोच रहा था, "अरे मुझे इस हिजड़े लौंडे के सामने गालियां दीं साले ने। वह बड़ा बहादुर बन गया। मुझे नीचा दिखा दिया। लौंडा मुझे नामर्द समझता होगा! उन् इनकी ......(गाली)......! यह भी याद करेगा। मेरा भी नाम......है!"

रात के अँधेरे में जब सभी कैदी अपनी अपनी धुन में मस्त थे— कोई धीरे २ गाना गा रहा था, कोई बातचीत कर रहा था, कोई नरापत्ती में लगा हुआ था, कोई ईश्वर-भजन कर रहा था और कोई पड़ा पड़ा चिन्ता कर रहा था, तब नं०१ ने दो-एक आदमियों से सलाह ली। ये वही लोग थे जो सदा ही उसे मर्द बनने को उत्साहित करते रहते थे।

"कहो फिर आज करता हूँ काम?" नं० १ की आँखों से हमला करने को तैयार भेड़िया झांक रहा था।

वे सिटपटा गये। डरते हुए जवाब देने लगे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके ऊपर भी मुसीबत न आजाय। एक बोला, "नहीं रे! सचमुच? अच्छा तो क्या इरादा है?"

"इरादा कुछ भी हो, तुम लोग मदद करोगे या नहीं? क्योंकि तुम्हें मालूम है कि वह मुझसे दुगना है। फिर उसके चार-छः आदमी भी कोठे में मौजूद हैं।"

"नहीं रे! कहता क्या है? क्या सचमुच कुछ इरादा है? तो अभी नहीं। कोठे में नहीं। बाहर करना दिन को। रात को नहीं।" वे चुपचाप इसी प्रकार के उत्तर देकर अपने बिस्तरों में मुँह ढककर सोगये।

एक महात्मा बड़े तीसमारखां थे। उन्होंने कहा, "कोई परवाह नहीं, पट्ठे! फ़िकर न करना! देखा जायगा! उसकी···(गाली)···!"

यह उत्तर बिलकुल अस्पष्ट था। यदि नं० १ का मन शान्त होता तो वह इसके खोखलेपन को आसानी से समझ जाता मगर उसका मन उबल रहा था। वह चुपचाप अपने बिस्तर पर मुँह ढककर लेट गया।

सब ने सोचा कि सब शान्त है मगर........

आधी रात के सन्नाटे में जब बाहर तारे टिमटिमा रहे थे और पेड़ पर एक उल्लू बैठा हुआ (शायद धोखे से कौवों के गले काटने की धुन में) हुंकार कर रहा था, उसी समय नं० १ ने चोर की तरह अपने कम्बल से मुँह निकाल कर देखा। सब कैदी सो रहे थे। नं० ३ ज़ोर ज़ोर से खर्राटे ले रहा था, उसका मुंह खुला हुआ था। वह सीधा चित्त सो रहा था। कमरे में एक धीमा लैम्प अपनी किस्मत को रो रहा था जिसके टूटे और मैले कांच से एक अकेला पतिंगा सिर पटक पटककर चक्कर लगा रहा था। कमरे में एक कैदी-अफ़सर टहल टहलकर पहरा दे रहा था। सच पूछो तो वह यद्यपि चल रहा था मगर उसकी आंखें नींद से बन्द थीं और वह एक शराबी की तरह झूम झूमकर इधर से उधर धीरे धीरे अपने पांव घसीट रहा था। ज्योंही उसने पीठ फेरी त्यों ही नं० १ तड़पकर परन्तु बिना किसी आहट के उठा और झपटा। उसके हाथ में एक बाल बनाने का अस्तुरा था। वह झट से नं० ३ की छाती पर बैठ गया और सप से उसकी नाक काटकर मय अस्तुरे के जंगले के बाहर फेंककर कूदकर अपने बिस्तर पर लेट गया।

जब कैदी-अफ़सर ने पीठ फेरी तो उसने एक भयंकर चीख सुनी, "हाय रे! हाय रे! मेरी नाक काट ली। मेरी नाक काट ली!"

सभी लोग भड़भड़ाकर उठ बैठे। 'नाक कट गई! नाक कट गई!' सभी चिल्लाने लगे। सब घबड़ा गये। उन्हें ऐसा लगा मानों उनकी नाक काटने के लिये भी कोई दौड़ा आ रहा है। नींद की खुमारी, कायरता की पुट और स्वार्थ तथा पतन का नशा तो था ही सभी घबड़ाकर अस्पष्ट हल्ला मचाने लगे। कुछ तो भय के मारे कम्बल में घुसकर पोटली बनकर रह गये। कुछ इधर उधर दौड़ने लगे, कुछ अफ़सरों को पुकारने लगे, परन्तु बिलकुल थोड़े आदमियों ने देखा कि नं० ३ खून से हाथ भरे, मुंह भरे, भूत के से स्वर में बैठा बैठा चिल्ला रहा है:—

"अरे मेरी नाक कट गई रे! अरे नाक काट ली रे!"